ईश्वर के वास्ते यह तृष्णा ही भक्ति कहलाती है, परन्तु यह जरूरी नहीं है कि यह भक्ति सदैवही ज्ञान से मिली हो, जो ज्ञान केवल मुक्ति का साधन है। सब ज्ञानी जिन्हों ने ईश्वर को पाया है भक्त हुए हैं, परन्तु सब भक्त ज्ञानी नहीं हुए, इसका कारण यह है कि ईश्वर के यथार्थ रूप को जाने बिना भी मनुष्य ईश्वर से प्रेम करसक्ता है। उस ब्रह्म को एक दफाही प्राप्त होजाना असम्भव है, जैसा लेटने के वास्ते जरूरी है कि मनुष्य बैठे, इसी प्रकार उस निर्गुण ब्रह्म को पाने के वास्ते जरूरी है कि मनुष्य प्रथम उसकी स्थूल मूर्तियों की उपासना करे। और भगवान् श्रीकृष्णके वचनानुसार 'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्" (४,११) जो सच्चे भक्त हैं यद्यपि उनकी प्रथमावस्था मूर्ति पूजा से आरम्भ होती है, उसको यह मूर्ति शनैः २ उस सर्वव्यापक सर्व शक्तिमान्र दयासागर का लिंग बनजाती है। शिवलिंग को देखकर एक शैवभक्त कहता है "ओ परमशिव ! तुम्हारा निवास तो त्रिपुरन्द्री में है, तुमने मुझ पर बड़ी कृपा की है सब को भुलाकर केवल आप के ज्ञान सूर्य्य के ध्यान में ही मैं मग्न रहता हूँ मेरे चित्त के अन्धकार को हटाकर आप उसमें ज्योतिर्मान हो मैंने सृष्टि के प्रत्येक परमाणु को देखा, और उन सब में एक भी ऐसा नहीं जिसमें आप नहीं हों, आप के बिना भी कुछ नहीं है परन्तु आप किसी में दिखाई भी नहीं देते। आहा! तेरे यथार्थ रूप को कौन जान सके! सच्चे भक्त की दृष्टि में मन्दिरों की मूर्तियें उसी परमेश्वर के कई रूप हैं और जब समयानुसार उनको ज्ञान प्राप्त होजाता है, यही मूर्तियें उनकी दृष्टि में और भावों को स्पष्ट करती हैं। एक महात्मा कहते हैं–हे ईश्वर परम शिव ! तेरे ललाट पर अर्धचन्द्र का अंकित होना इस बात को जतलाता है कि तू ज्ञान का आधार है, तेरे हाथ में त्रिशूल का होना इस बात को स्पष्ट करता है कि तू ही "त्रिमूर्ति" है तेरा श्वेत नन्दी पर आरूढ होना इस बात का बोधक है कि तू पुण्य का सागर है यद्यपि तेरा ऐश्वर्य्य अनन्त है तो भी तू इतना छोटा है कि मेरे हृदय में समा सक्ता है, यद्यपि तेरे स्वरूप की कोई मूर्ति नहीं है, तौ भी यह सारा जगत तेराही रूप है,

[illegible]
आनन्द से उस रूप को धारण करलेता है, जो तेरा भक्त तेरे वास्ते निर्माण करता है, तौ भी तू पापी के साथ नहीं रहता ॥

मूर्ति लिंगों से ईश्वर की पूजा करना निर्गुण ब्रह्म की उपासना की अपेक्षा उत्तम नहीं है, परन्तु बहुत से मनुष्य इस उपासना को भी करने के अयोग्य हैं, सगुण से निर्गुण उपासना बहुत कठिन है। यथाः—

क्लेशोऽधिकतरस्तेषां अव्यक्तासक्तचेतसां।
अव्यक्ताहिगतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते ॥

यह बास्तव में भ्रम ही है क्योंकि अमूर्त्त ईश्वर की मूर्त्ति मान लीजाती है परन्तु भ्रम दो प्रकार का होता है, एक समवादि भ्रम और दूसरा विषमवादि भ्रम। एक बन्द कमरे में लम्प जलरहा है, परन्तु उसकी झोथों से ज्योति कुछ बाहर आरही है, अब कोई मनुष्य इस ज्योति को मणि समझ दौड़कर जोति के पास जाता है परन्तु मणि न झोथों में है और न कमरे में, इसको कहते हैं बिसमवादि भ्रम, क्योंकि इसमें पड़ने से मनुष्य उस वस्तु को प्राप्त नहीं होता जिस के पीछे वह दौड़ा था। और यदि लम्प के बदले वहां सच मुच मणि होती तो मनुष्य को मणि प्राप्त होजाती, परन्तु झोथों में नहीं वरञ्च कमरे में इस को कहते हैं समवादि भ्रम, क्योंकि इसमें पड़ने से मनुष्य उस वस्तु को पालेता है जिसको वह ढूँढ़ने निकला था। यह सगुणोपासना या अपरा भक्ति समवादिभ्रम है क्योंकि इसको करने से मनुष्य अन्त में निर्गुण ब्रह्मको पालेता है। और हमारा इन्द्रियजन्य भोगों के पीछे भटकते फिरना बिसमवादि भ्रम है, क्योंकि इसके सेवन से हम सच्ची शान्ति से दूर २ ही होते जाते हैं। एक भ्रम से दूसरा भ्रम नष्ट होजाता है सो इस प्रकार इन्द्रिय सुख के भ्रम को छोड़कर इस सगुणोपासना रूपी भ्रम को प्राप्त कर जैसे मन का प्रथम भ्रम हटजाता है ॥

यह भक्ति तीन प्रकार की होती है, बाह्य, अनन्य और एकान्त, जब भक्त संसार के दुःखों से बिचलित होकर उसके चरणारविन्द की शरण

लेता है और प्रेम में मग्न होकर ईश्वर की इस प्रकार से स्तुति करता है, कि 'मेरे परम पिता ईश्वर के चरण हीन बीणा के स्वर की नाईं या सायङ्काल के पूर्ण चन्द्र की नांईं शोभित हैं' तो उसे बाह्य भक्ति कहते हैं वास्तव में ईश्वर को अपने से बाहर समझ कर जितनी उपासना की जाती है। वह सब बाह्यभक्ति है। सब देवों की अपेक्षा एक देवता की ही उपासना का नाम अनन्य भक्ति है। वास्तव में ऐसा नहीं है कि अनन्य भक्ति में और देवताओं की सी उपासना नहीं है, बरञ्च वह सब देवताओं को उस अपने ही इष्ट देवता के रूप में मानता है। एक वैष्णव भक्त कहते हैं "मैं जिस ईश्वर का साक्षात्कार करता हूँ जो आपही सब कुछ है जो सकल चराचर सृष्टि का कारण है, जो सनातन है, जो आप विष्णु है, शिव और ब्रह्म जिसके रूप हैं (Materalist) जो मधु और अमृत से भी बढकर मीठा है और जो मेरे हृदयाब्ज में विराजमान है।" वैसेही शैव भक्त कहता है, "उसका निवास विदांबर में है। जो दुग्ध और मधु से भी मीठा है जो सजीव ज्योति है, जो ब्रह्मा और विष्णु है, जो गरजते समुद्र और निश्चल हिमवान में व्यापक हों" अपने इष्ट देवता ही में सब देवों को देखना अनन्य भक्ति है, इष्ट देवता चाहे कुछ ही हो, भक्त उसको परमात्मा ही मानता है। एक महात्मा कहता है "मनुष्यो ! चाहे तुम ब्रह्मा, विष्णु, या शिव की उपासना करो, या उनका ध्यान करो उनके ज्ञान में रत रहो, चाहे तुम किसी की उपासना करो, तुम उस परम पुरुष की ही उपासना करते हो—

आकाशात्पतितं तोयं यथा गच्छति सागरम्।
सर्वदेवनमस्कारः केशवं प्रति गच्छति ॥

यह श्लोक हम नित्य पढते हैं। भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—

येऽप्यन्यदेवता भक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विताः।
तेऽपिमामेव कौंतेय भजंत्यविधिपूर्वकम् ॥ ६। ३२।

उस परमेश्वर के अनन्त गुण कल्याण के अनन्त रूपामृत गुणोंके ध्यानमें मग्न रहना एकान्त भक्ति है। एकान्त भक्तिही सगुणोपासना का सर्वोत्तम रूप है॥

पं० अमोलकराम जी बी. ए.

❀ वैदिक धर्म्म सर्व श्रेष्ठ क्यों है ? ❀

इस प्रश्न का उदय प्रायः सबही के मनमें हुआ करता है। इस भूमण्डल भर में मनुष्य समाज और धर्म्म का बड़ा निगूढ़ सम्बन्ध है। जहां २ मनुष्य हैं वहीं २ उनका कोई न कोई धर्म्म भी अवश्यही है। समाज जितना शिक्षित और अविद्या रहित होता है, धर्म्मभी उतनाही उज्ज्वल और अधिकांग सम्पन्न होता है। और और धर्म्मों में मनुष्य के स्वभाव और सुख के अनुसार धर्म्म के एक २ वा दो २ सोपानों का वर्णन है किसी धर्म्म से नीचे के दो सोपान छोड़ दिए तीसरा वर्णन करदिया, अब नीचे के दोनों सोपानों पर चढ़ने की प्रणाली जानी जासकती है न ऊपर, और भी सोपान हैं यह ज्ञान होसकता है, परन्तु वैदिक धर्म्म में यह त्रुटि नहीं है। इसीसे वैदिक धर्म्म सर्व श्रेष्ठ है।

अब हम धर्म्म के इन स्वाभाविक भेदों को दिखाकर वैदिक धर्म्म की सर्व श्रेष्ठता दिखाते हैं। इस संसार में जितने धर्म्म प्रचलित हैं उन सब को पांच भागों में विभक्त किया जाता है।

१—जीव का नित्य सुखोद्देशक धर्म्म।

२—जीव का सुख दुःख नाशक धर्म्म।

३—जीव का अनित्य सुखोद्देशक धर्म्म।

४—जीव का समस्त सुख वर्द्धक नैतिक धर्म्म।

५—जीव का जड़ सामर्थ्य सम्वर्द्धक धर्म्म।

जीव का नित्य सुखोद्देशक धर्म्म उस धर्म को कहते हैं जिसमें जीव तत्त्व को नित्य कहकर सिद्धान्त किया है, और नित्य आनन्द भोगही जीव का प्रयोजन सिद्ध किया है। भगवत्तत्व की नित्यता, प्रीतितत्त्व, जीव

के जड़ सम्बन्ध की अनित्यता और परलोक प्रभृतितत्त्व प्रमाणित किये गए हैं। इसी धर्म्म की शारीरिक और मानसिक बृत्तियों की परिचालना को भगवद्भक्ति, इसी धर्म्म की समष्टि को कहते हैं "श्रीवैष्णवधर्म्म"।

जिन समस्त धर्मों में इन सब मूल विषयों पर बिचार किया गया है या इन तत्त्वोंकी समालोचना कीगई है वे सब धर्म अवश्य ही जीव के नित्य सुख या धर्म के नाम से अभिहित होंगे। चाहे उनमें कुछ भेद भी प्रतीत होता हो।

जो लोग धर्म को वैज्ञानिक दृष्टि से देखते हैं, वे अवश्यही स्वीकार करेंगे कि खृष्ट धर्म, मोहम्मदीय धर्म, ब्राह्मधर्म, प्रभृति सर्व धर्म जीव के नित्य सुख बोधक धर्म हैं। इनमें चाहे जितना अवान्तर भेद हो, परन्तु मूल में ये सब एक जातीय हैं। भेद केवल प्रकृत और विकृत का है॥

जीव का सुख दुःख नाशक धर्म, इस जगत् में अनेक प्रकार से दृष्टि होता है। उन सबमें बौद्ध धर्म्म ऐसी मिसम् और केवल अद्वैतबाद प्रधान है यह मत समय पर उत्थित होकर जगत के अनेक स्थानों में व्याप्त हुआ है। इसके आकार भिन्न देशों में भिन्न २ प्रकार के हैं; किन्तु विचार करने से इसका परम सिद्धान्त सर्वत्र एकही है। इन सब धर्म्मों को जीव का सुख दुःख नाशक धर्म्म कहा जाता है, क्योंकि इनमें जीव की सत्ताही अमङ्गलमय है, इन धर्म्मों में जीव की सत्तानाश ही का नाम परम पुरुषार्थ है, सत्तानाश दो प्रकार से सिद्धान्तित होती है। एक यह कि एक मात्र बस्तु है वह नित्यही निर्गुण और विकार शून्य है। जीव की सत्ता समुदाय बिकार और भेदमय है, अतएव मिथ्या और क्लेशमय है। जिस अवस्था में यह सब व्यावहारिक भेद चरम अभेदतत्त्व में पर्यवस्थित होता है, उसी अवस्था का नाम "मुक्ति" वा "निर्वाण है"। भेद जनित सुख दुःख का विनाशक एक मात्र निर्वाण ही है जिस धर्म्म के आचरण करने से निर्वाण हो, उसी धर्म्म को जीव का सुख दुःखका नाशक धर्म्म कहा-जाता है। ग्रीक देशके दार्शनिक विद्वान जेनोफेनिस् और परमिनाईडस् प्रभृति ने उस देश में इस मत को प्रचलित किया था। मध्ययूरोपमें भी

यही मत कुछ भिन्न आकार धारणकर स्पिनजा, सेलिङ्ग और हेजेल प्रभृति पण्डितों के द्वारा प्रचलित हुआ है इसी मत को और भी परिवर्त्तन कर स्कूपेन हुवा और हार्टमान् प्रभृति ने जगत्में 'पेसोमिजर' नाम से प्रचलित किया है। हमारे देशमें जैनमत बौद्धमत और केवल अद्वैत बाद इसी मत के अनुगत हैं। कुछ प्रकारान्तर से इसी मतको गुरू नानक शिवनारायण, गोरखनाथ, आउलचन्द् और जगन्नाथदास प्रभृति ने उपासना सम्प्रदाय में प्रविष्ट कर दिया। (२) चाहें जितना आकार परिवर्तन हो किन्तु जिस मत में मुक्ति चरम लय रूप है उन सब मतों को जीव के सुख दुःख नाशक धर्म्म ही में गिनना चाहिए।

जीव का अनित्य सुखोद्देशक धर्म्म इस जगत् में अनेक रूपों से दिखाई देता है "कर्म्म मार्ग" इस मत में कहीं २ ईश्वर प्रणिधान है कहीं कहीं वह भी नहीं है। इस लोक में देहगत सुख, देहपतन के अनन्तर परलोक में दूसरा देह प्राप्त होकर ऐन्द्रियक विषय सुख, यही सब इस धर्म्म का तात्पर्य है। द्रव्यों का संघटन विशेष और विशेष कार्य कलाप के द्वारा यह सुख प्राप्त होता है। यह मत जीव के नित्य सुखोद्देशक धर्म में भी गुपचुप जा मिला है। मुसलमानी धर्म्म यद्यपि जीवको नित्य सुखोद्देशक धर्म्म है तथापि उस धर्म्म के स्वर्ग सुख की इन्द्रियता देखने से स्पष्ट प्रतीत होता है कि अनित्य सुखोद्देशक धर्म्म उसमें गुप्तरीति से प्रविष्ट होरहा है खृष्टान धर्म्म में यद्यपि जीव के अनित्य सुखोद्देशक धर्म्म का इतना प्राबल्य नहीं है, तथापि खृष्टान धर्म्म ऐसे जीव के अनित्य सुखोद्देशक धर्म्म स सर्वथा रहित हो सो भी नहीं है। क्योंकि "पुनुरुत्थान" के व्यापारसे हमारा सन्देह कुछ कुछ दृढ़ होता है और 'गार्डन आफ़ ईडन' के भावों को बिचारने से वह सन्देह बिश्वास रूप होजाता है।

जीव का समस्तसुख सम्वर्द्धक नैतिक धर्म्म जडीय विज्ञान का आश्रयकर बहुत से पण्डितों का प्रिय हुआ है। जड बाद, स्थिर बाद, समाज बाद् प्रभृति नास्तिक धर्म्म सब इसी जीव के समस्त सुवर्द्धक नैतिक धर्म्म के अन्तर्गत हैं। जीव का समस्त सुखवर्द्धक नैतिक धर्म्म ऊपर

के वर्णित तीनों धर्म्मों में नहीं हो सो नहीं, इन तीनों प्रकार के धर्म्मों में उसका सद्भाव है, किन्तु जब वह इन धर्म्मों में से स्वतन्त्र होकर मनुष्योंको दर्शन देताहै तबहीं वह जडवाद स्थिरबाद वा समाज बाद हो-जाता है। यह जीव का समस्त सुखवर्द्धक नैतिक धर्म्म सब अवस्थाओं में जीव के अनित्य सुखोद्देशक धर्म्म के लिए रहता है। इनको पृथक् २ जानने का हेतु यही है कि जीव का अनित्य सुखोद्देशक धर्म्म किसी किसी अवस्था में समस्त सुखवर्द्धक नहीं होता है। किन्तु समस्त सुखव-र्द्धक नैतिक धर्म्म सब अवस्थाओं में अनित्य सुखोद्देशक रहता है कर्म्मकांड अधिकांश रूपसे समस्त सुखवर्द्धक नैतिक धर्म्म में आत्मा की नित्यता नहीं है। जो कोई जीवात्मा कुछ कार्य्य करते हैं उसका फल समस्त जीव भोग करते हैं। कोई कहते हैं कि शक्ति इस फल को परिचा-लित करती है, कोई कहते हैं अदृष्टही यहफल देता है, कोई कहते हैं अप-र्वक नामक एक तत्त्व इस फलको जीवके सन्निहित करता है।

जीवका जड़ सामर्थ्य वर्द्धक धर्म्म बिविध देश में बिविध रूपसे विवक्षित होता है। कहीं कहीं वह धर्म्म केवल इस जड़ शरीर की वैज्ञानिक शक्ति के बढाने का परामर्श देता है और किसी देशमें किसी मतमें इस स्थूल शरीर के अतीत सूक्ष्म देह वा ज्योतिर्मय वैद्युतिक शक्ति समुदाय रूप देहकी गुप्त शक्ति समुदाय को प्रकाश कराना बढाने का उपदेश है। इस देश वा अन्यदेशों में जितने प्रकार के तान्त्रिक,यान्त्रिक, मुद्रा घटित और यौगिक मत प्रचलित हैं वे सब इसी मत के अन्तर्गत हैं। षड़ङ्ग योग बौद्ध योग, थियोसोफी, प्रभृति सब इसी मतके अन्तर्गत हैं। थियो-सोफी में यद्यपि जीव के सुख दुःखनाशक धर्म्म के साथ अधिकांश स्वार्थ लिया है सत्य, किन्तु उसकी निज भूमि यही जीव का जड़ सा-मर्थ्य संवर्द्धक धर्म्म है।

वैज्ञानिक दृष्टि से थोडा विचार पूर्वक देखने से स्पष्ट प्रतीत होगा कि इस संसार में जितने प्रकार के धर्म्म प्रचलित हैं और जितने प्रकार के और नवीन धर्म्म प्रचलित होसकते हैं वे सब इन्हीं पांचों प्रकारों के

अन्तर्गत हैं और रहेंगे क्योंकि यह पांच भेद वैज्ञानिक क्रमोन्नति पर स्थापित हैं. और यह भी स्वीकार करना होगा कि इस समय तक जितने धर्म्म प्रचलित हुये हैं वा आगे होंगे वे सब इन्हीं पांचों प्रकार के धर्मों में से एक को अथवा दूसरे को लेकर चाहे कइयों की आंशिक अवस्थाओं को चाहे एक से उन्नति कर दूसरे तक पहुँचने की मध्य अवस्था को लेकर प्रकाशित हैं और होंगे ॥

यहां पर यहभी सूचित करना आवश्यक है कि हमारे लेख में एकांकाश्रित धर्म सर्वोच्च और क्रमशः निम्न श्रेणीका है। जीव के पक्षारंभ में पञ्चम श्रेणी से चलकर क्रमशः प्रथम श्रेणी तक जाने की आवश्यकता है॥

अब हम क्रमशः इन पांचों प्रकार के धम्मों का संक्षिप्त वर्णन कर-चुके हैं। यहां इन सब के विषय में जो वैदिक पौराणिक वाक्य मिलते हैं, उनको संक्षेप से उद्धृत करते हैं। उद्धार का क्रम हमने यह रक्खा है कि जो उनके आरोहण का क्रम है अर्थात् पञ्चमश्रेणी से आरम्भ कर प्रथम श्रेणी तक ॥

५--जीव के जड़ सामर्थ्य वर्द्धक धर्म्म विषय में अग्निर्हिमस्य भेषजम्॥

सूर्य्यःएकाकीचरति चन्द्रमा जायते पुनः। तद्दिहैतदृषिर्वामदेवः प्रतिपेदे अहं सूर्य्योभवम्मनुरभवम् ॥

अग्नि हिम का भेषज अर्थात् औषधि है। सूर्य्य दिन में अकेला विचरता है। उस समय और सब ग्रह अस्त होजाते हैं चन्द्रमा फिर सूर्य्य के प्रकाश से रात्रि को प्रकाशित होता है ॥

इत्यादि जड़पदार्थ के स्वरूप निर्णय करनेवाले वाक्य यजुर्वेद में हैं। वामदेव ऋषि को ज्ञान के द्वारा यह प्राप्त हुवा कि मैं सूर्य्य हुआ था मैं मनु हुआ था। इत्यादि सूक्ष्म शरीर के शक्ति वर्द्धक उदाहरण उपनिषदों में मिलते हैं ॥

४--जीव के समस्त सुख वर्द्धक नैतिक धर्म्म के विषय में--मनीषिणः प्रभरद्ध्वं मनीषां यथायथा मतया सन्ति नृणां सत्यंवद धर्म्मंचर * * * मातृ-

देवो भव, पितृदेवो भव, आचार्यदेवो भव * यान्यस्माकं सुचरितानि तानि त्वयोपास्यानि नो इतराणि ॥

तुम बुद्धिमान् होकर ऐसी बुद्धि संग्रह करो जैसी लोगों की प्रकृति हो इत्यादि यथा प्रकृति सबके प्रिय बनने और सब से बुद्धि सीखने के वाक्य ऋग्वेद में हैं। सत्यबोलो धर्म्म करो, मातृदेव हो, पितृदेव हो, आचार्य-देव हो, (अर्थात् इनमें देवता के समान भक्ति करो जो हमारे अच्छे चरित हैं उनका अनुकरण करो न कि हमारे बुरों का–

इत्यादि नैतिक उपदेश तैत्तरीय उपनिषद् में हैं।

३—जीवके अनित्य सुखोद्देश धर्म्म के विषय में। अग्निष्टोमेन यजेत स्वर्गकामः। यावज्जीवमग्निहोत्रं जुहुयात्। "तदेतत् सत्यं मन्त्रेषु कर्माणि कवयोयान्यपश्यन् तानि त्रेतायां बहुधा सन्ततानि। तान्याचरथ नियतं सत्य कामः एष वः पन्थाः सुकृतस्य लोके"।

स्वर्गकी कामनाकर अग्निष्टोमयाग करै जबतक जीवितरहे अग्निहोत्र करै।

इत्यादिक ब्राह्मण श्रुतियां यज्ञ और यज्ञफल स्वर्गप्राप्ति विधान करती हैं।

कवियों नें (ऋषियों ने) वेदमन्त्रों में जो सब कर्म देखे हैं उन्हीं को सत्य कहा है। वे कर्म त्रेता में बहुधा विस्तार किये गये हैं। तुम नियत सत्य काम होकर उन कर्मों का आचरण करो येही तुम्हारे सुकृत (पुण्य) लोक का पथ है। इत्यादि कर्म्म प्रशंसा के वचन मण्डूकोपनिषद् में हैं॥

२—जीव के सुख दुःख नाशक धर्म्म के विषय में "नभयं सुखंदुःखं च तथा मानापमानयोः यत्तद्भावविनिर्मुक्तन्तद्ग्राह्य ५ ब्रह्मतत् परम्। अत्यन्तोपरतिर्यत्र दुःखस्य च सुखस्य च" न भय है न सुख है न दुःख है न मानापमान का विचार है इन समस्त भावों से रहित वहही परब्रह्म है वह ही ग्राह्य है। इत्यादिक सुख दुःख नाशक भाव को निर्वाण रूप से तेजोबिन्दूपनिषद् में वर्णन किया है।

वही परम योग जीवों के निःश्रेयस के निमित्त है कि जहां दुःख और सुख दोनों की अत्यन्त निवृत्ति है। इत्यादि सांख्य वर्णन में श्रीभागवत् में भी देखा जाता है।

१-जीव के नित्य सुखोद्देशक धर्म्म के विषय में "नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानामेको बहूनांयो विदधाति कामान् । तमात्मस्थं येनुपश्यन्तिधीरास्तेषां शांतिः शाश्वती नेतरेषाम् ।"

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्योनमेधया न बहुनाश्रुतेन।
यमेवैषवृणुतेतेनलभ्यस्तस्यैष आत्मावृणुतेतनुंस्वाम् ॥

जो नित्य जीवों का नित्य है, चैतन्य जीवों का चैतन्य है, बहुत से जीवों का एक नियन्ता है जो समस्त कामों का बिधान करता है। वह आत्माधार है उसे जो जीव देखते हैं उन्हीं को शाश्वती अर्थात् नित्य शांति मिलती है औरों को नहीं। इत्यादि कठोपानिषद में भगवत् प्राप्ति के द्वारा नित्य सुख का विधान है ॥

यह आत्मा बड़े २ लैकचरों से नहीं मिलता है, न बुद्धि से न बहुत पढ़ने से। यह जिसको बरण करता है अर्थात् कृपा करता है उसी को मिलता है उसी के आगे यह अपना तनु (मूर्ति-स्वरूप) प्रकाश करता है ॥

इत्यादि मण्डूकोपनिषद् में भगवान् प्राप्ति भगवत् कृपा साध्य है यह सब वर्णित है।

अब हमारे इस ऊपर के प्रस्ताव के पाठ करने से यह स्पष्ट सिद्ध होजायगा कि इस जगत् में जितने आस्तिक और नास्तिक धर्म्म प्रचलित हैं वे सबही अधिकारि भेद से वैदिक धर्म्म में आलोचित हैं। वैज्ञानिक विचार से धर्म्म के जितने भेद हैं वे सब एकाधार वैदिक धर्म्म में ही हैं सुतरां वैदिक धर्म्म ही सर्व श्रेष्ठ होसक्ता है और सब अवस्थाओं में जीव का जीवन स्वरूप होसक्ता है। इसीके द्वारा जीवनमात्र का परम कल्याण हो सक्ता है। इसी 'वैदिक धर्म्म' का नामान्तर है "हिन्दू धर्म्म" यही "वैदिक धर्म्म" सर्व श्रेष्ठ है अब आप को भी यह प्रतिपन्न होगया कि "वैदिक

धर्म्म सर्व श्रेष्ठ क्यों है ?" अब आपके हृदय में यह प्रश्न रूप से न रहा होगा कि वैदिक धर्म्म सर्व श्रेष्ठ क्यों है ? परन्तु अब आप दूसरों के आगे भी यह सिद्धान्त कर सकेंगे कि—वैदिक धर्म्म सर्व श्रेष्ठ क्यों है ? सुतरां हम भी अब इस प्रस्ताव को यहीं पूर्ण करते हैं कि "वैदिक धर्म्म सर्व श्रेष्ठ क्यों है" ॥

जीव की नितान्त माया बद्ध जड़ अवस्था से आरम्भ कर, विशुद्ध चिन्मय अवस्था प्राप्त होने तक अनेक सोपान हैं। उन सब सोपानों को क्रमशः अतिक्रम कर सर्वोच्च चूड़ा तक आरोहण करने को क्रमोन्नति लाभ करने के अनुसार ये पांच भेद हुए हैं ॥ वैदिक आर्य धर्म्म की श्रेष्ठ-ताका यही कारण है कि वैदिक धर्म्म में इन पांचों प्रकार के धर्म्म का यथावत् सन्निवेश है और और धर्म्मों में ऐसी सुन्दर प्रणाली से पाचों प्रकार के धर्म्मों का समावेश वा सामञ्जस्य नहीं है। किसी में दो का वा तीन तक का अवस्थान है औरों को छोड़ दिया है। अतएव उन धर्म्मों में किसी धर्म्म को पूर्ण धर्म्म नहीं कहा जासक्ता है इसी से वे सब धर्म्म जीव की सब अवस्थाओं में उपयोगी नहीं होसक्ते हैं, किन्तु वैदिक धर्म्म सब अवस्थाओं में जीव के जीवन के प्रत्येक अंश के साथ मिलकर जीवन स्वरूप होजाते हैं, धर्म्म जब तक जीव का जीवन रूप न हो तबतक जीवन धर्म्ममय और जीव धार्मिक नहीं होसकता है।

अन्यान्य धर्म्मों में एक वा दो सोपान को धर्म्म रूप से दिखा दिया है, परन्तु निम्न सोपान क्यों कर अतिक्रम किये जासकते हैं और इससे ऊपर कुछ है कि नहीं, इन विषयों में कुछ भी उपदेश नहीं है। इससे फल यह होता है कि धर्म्म एक स्वतन्त्र जड़ पदार्थ होजाता है जीवन रूप नहीं होसक्ता है। धर्म्म जब तक धार्म्मिक का जीवन नहीं होजाता तब तक वह एक आगन्तुक के समान वा एक अतिथि के समान गृह में निवास करता है। इससे जीव का कब मंगल होसक्ता है ? ॥

जड़ बादी जड़बादी रहजाते, कर्मी कर्मी ही रहजाते हैं, ज्ञानबादी ज्ञानबादी हो रहजाते हैं उच्च अधिकार नहीं प्राप्त करसकते हैं ॥

वैदिक धर्म्म में इन सब स्थानों का भिन्न २ वर्णन है । जीवकी निष्ठानुसार यथा भूमि में अवस्थान और निष्ठा अतिक्रम होने से निम्न भूमिकाको परित्यागकर उच्च भूमिका आरोहण करना यह सब यथा विहित वर्णित है।

और और धर्म्म एकही एक अवस्था के जीव के कल्याणकारी हैं परन्तु वैदिक धर्म्म जीवकी सब अवस्थाओं में कल्याण विधान करता है। ऐसेही भूरि भूरि उपदेश वैदिक धर्म्म में प्रदत्त हैं ।

वैदिक धर्म्मका आश्रय करने पर भी यदि जीव को विशुद्ध भगवद्भक्ति पर्यन्त उच्चगति शीघ्र न मिले तो अवश्यही वह दुर्भाग्य जीव कहा जायगा।

हमारा उपर का यह हेडिंग कि " वैदिक धर्म्म सर्व श्रेष्ठ क्यों है ? अवश्य अब पाठक जन समझ गये होंगे।

फिर भी इसका सार संकलन दिये देते हैं कि इसीसे वैदिक धर्म्म सर्व श्रेष्ठ है कि इसमें जीवगण की सब अवस्थाओं में कल्याण होने की संभावना है अन्यान्य धर्म्मों में किसी नियमित अवस्थामें और कदाचित् मंगल होता है। यही वैदिक धर्म्म की श्रेष्ठता है इसी से वैदिक धर्म्म सर्व श्रेष्ठ है। अब सब श्रोतागण समझगये हैं कि "वैदिक धर्म्म सर्व श्रेष्ठ क्यों है"।

श्रीमधुसूदन गोस्वामी वृन्दावन-

पुत्र।

महाशय ! पुत्र यह नाम भी कैसा मधुर और मनोहर है, महाकवियोंने इस शब्दकी महिमा नाना प्रकारसे वर्णन कीहै,

इदं तत्स्नेहसर्वस्वं सममाढचदरिद्रयोः।
अचन्दनमनौशीरं हृदयस्यानुलेपनम् ॥

पुत्र स्त्री पुरुषोंके अनुरागका सर्वस्व है, कैसी अद्भुत बात है कि धनी और दरिद्र दोनोंको पुत्ररूप धन समान है। पुत्रके होनेसे जो सुख सार्वभौम राजाको होताहै वही एक रङ्क पुरुषको भी होताहै चन्दन और खसका लेप करनेसे जो जो आनन्द पुरुषको मिलताहै वैसा ही सुख सजीव खिलौने पुत्रके आलिङ्गनसे प्राप्त होताहै।

दिग्वाससं गतव्रीडं जटिलं धूलिधूसरम्।
पुण्याधिका हि पश्यन्ति गङ्गाधरमिवात्मजम् ॥

एक कवि बालकको भगवान् शिवजीकी उपमा देताहै—शिवजी दिगम्बर हैं, वह ज्ञानस्वरूप होनेसे सदा अवधूत वेशमें रहते हैं, वस्त्रसे शरीरको ढांपनेकी उपाधि उनको नहीं है। लड़के भी दिग्वासस् अर्थात् नंगे रहतेहैं। शङ्करजीको लज्जा नहीं है, बालकोंको भी लज्जा नहीं होती। शम्भु जटाधारी हैं, लड़के भी बालोंकी लटें रखाये रहते हैं। भोलानाथजी विभूति लगानेसे धूसर रहतेहैं, बालक भी बालू मिट्टी आदि में खेलनेसे धूसर होरहतेहैं। संसारमें जिन तपस्वियोंके बडे बडे कठिन तप हैं—जिन्होंने बहुत पुण्य कियेहैं वे ही शिवजीके समान पुत्रोंको देखतेहैं। (पातेहैं) कहाँ तक लिखाजाय ऐसे ही अपूर्व अपूर्व भाव कवियोंने पुत्रके ऊपर लिखे हैं।

धर्मशास्त्रकारोंने तो इस शब्दका अर्थ भी लिखा है—

पुन्नाम्नो नरकाद्यस्मात्पितरं त्रायते सुतः।
तस्मात्पुत्र इति प्रोक्तः स्वयमेव स्वयम्भुवा ॥

'पुत्' इस नामका एक नरक है उससे पिताको जो बचावे उसको पुत्र कहते हैं। यह पुत्रशब्दकी व्युत्पत्ति स्वयं ब्रह्माने कीहै। वशिष्ठस्मृतिमें लिखाहै—

ऋणमस्मिन्सन्नयति अमृतत्त्वं च गच्छति।
पिता पुत्रस्य जातस्य पश्येच्चेज्जीवतो मुखम्॥

पिता यदि जीतेहुए पुत्रका मुख देखले तो पितरोंका ऋण उसमें रखदेताहै (पितृऋणसे उऋण होजाताहै) और मोक्षको प्राप्त करता है। शास्त्रोंका सिद्धान्त है कि मनुष्य, इस जीवलोकमें पैदा होते ही तीन ऋणोंसे ऋणी होताहै यथा देव ऋण पितरऋण और अतिथिऋण। जब पुत्र उत्पन्न होजाय तो इन तीनों ऋणोंसे उऋण होजाताहै, क्योंकि अपना ऋण अपने पुत्रके ऊपर रखदेताहै। यदि पुत्र योग्य हो और गया आदि स्थानोंमें पितरोंका श्राद्ध करदे तो अवश्य उसके पितर मुक्त होजातेहैं,पुत्रकी योग्यता पिताके अधीन है, क्योंकि पुत्र पिताका प्रतिबिम्ब है, जैसे गुण दोष पिता में होतेहैं वैसे ही पुत्रमें आतेहैं इसीसे गर्भाधानकी विधि बनीहुई है, उसके अनुसार पवित्र संस्कारवाला पिता आधान करै तो अवश्य सुयोग्य पुत्र उत्पन्न हो। शास्त्र में कहा हुआ है कि—

अङ्गादङ्गात्सम्भवति हृदयादभिजायते।
आत्मा वै पुत्रनामासि त्वं जीव शरदांशतम्॥

यह मन्त्र स्पष्ट कह रहा है कि पुत्र पिताके प्रत्येक अङ्गसे और मनसे उत्पन्न होताहै, पुत्र नाम जिसका पड़ाहै ऐसा आत्मा ही है अर्थात् पिता ही पुत्ररूप धारण कर उत्पन्न होताहै ऐसे पुत्र तुम सौ वर्ष जीओ! इस मन्त्रसे निर्विवाद सिद्ध हुआ कि योग्य पुत्र उत्पन्न करने के लिये पिताकी योग्यताकी आवश्यकता है। आपको विदित होगा कि चित्रकार (फोटोग्राफर) जब किसीका प्रतिबिम्ब लेताहै तो कैसी सावधानी प्रतिबिम्ब निकलवानेवालेको करनी पड़तीहै, जहां कुछ भी हिले या आँख ही मिचगई तो चित्र टेढ़ा अथवा कुरूप होजाताहै। यह स्मरण रहे कि मनुष्यके

निर्दोष होनेपर भी उसकी असावधानी मात्रसे कैसा परिणाम होजाताहै। यह चित्रकी बात है जो कि विनोदमात्रके लिये खिंचवाया जाताहै। मनुष्यकी उत्पत्ति इससे कुछ विचित्र है। यह चित्रकारि ईश्वरकी है। इसका चित्रकार बड़ा सिद्धहस्त है अनादिसे सृष्टि चली आई है। न इसके अन्तका ही पता लगता न आदिका। अपनी बुद्धिके अनुसार यद्यपि मुनियोंने इसका भी निश्चय किया है पर मनुष्य अपनी तुच्छ बुद्धिसे उसमें कुछ तर्क वितर्क नहीं कर सकता। प्रयोजन यह है कि इतने समयका चित्रकार भगवान् देशकाल जीव के पुण्यापुण्यकी सामग्री (भाग्य) पुरुषकी चेष्टा इत्यादि सामग्री द्वारा जो चित्र मनुष्यका खींचता है उसमें कभी फर्क नहीं पड़सकता। जीवके पुण्यापुण्यकी सामग्री ही मुख्य कारण है इससे मनुष्यके पूर्वजन्मके शुभकर्म तथा इस जन्मके उत्तम कर्मोंसे जिस पुत्रका जन्म होगा वही यथार्थ पुत्र कहानेयोग्य हो सकता है। नीतिकारोंने इसी पर कहाहै कि "सन्ततिः पुण्यमाख्याति वपुराख्याति भोजनम्" सन्तानके आचरण पिताके पुण्यको बतातेहैं, शरीरका पुष्ट वा कृश होना ही भोजनका अनुमान करादेताहै। इसीलिये मुनि तथा नीतिकार उपदेश करते हैं कि कुछ भी समय धर्म अर्थ और कामों से रहित व्यतीत न होना चाहिये। धर्मशास्त्रकारोंने स्पष्ट कहा है कि, सन्तान माता या पिताके शील के ही अनुसार होती है इससे उचित है कि माता पिता दोनों सुयोग्य होने चाहिये।

कभी कभी ऐसे प्रतिबन्धक कर्म आजाते हैं कि मनुष्यों की सन्तति नहीं होती, इस दशामें गृहस्थाश्रम अपूर्ण रह जाता है क्योंकि पुत्रके न होनेसे देव पितर और मनुष्य ऋण चुकता नहीं, यह गृहस्थका बडा दुर्भाग्यहै। वसिष्ठजीने अपनी बनायी हुई स्मृतिमें लिखाहै कि "नापुत्रस्य लोकोऽस्तीति श्रूयते" अर्थात् वेदोंका सिद्धान्त है कि जिसके पुत्र न हुआ हो उसको स्वर्गादि उत्तम लोक मरनेके पीछे नहीं मिलते इससे महर्षि मनुने कहाहै कि—

अपुत्रेण सुतः कार्यो यादृक् तादृक् प्रयत्नतः ।
पिण्डोदकक्रियाहेतोर्नामसङ्कीर्तनाय च ॥

जिसके पुत्र नहो उसे जिस तरहसे हो उस तरहसे पितरोंके श्राद्ध तर्पण आदि करने तथा संसार में अपने नाम चलनेके लिये धर्मपुत्र बनाना चाहिये । पहले समयमें ११ प्रकारके धर्मपुत्र करनेका अधिकार था पर कलिमें केवल दत्तक लेनेकी ही मुनियोंने आज्ञादी है, शेष १० प्रकारके पुत्रों का त्याग कियाहै, इससे यहां पर दत्तकके विषयमें कुछ लिखते हैं ।

माता पिता वा दद्यातां यमद्भिः पुत्रमापदि ।
सदृशं प्रीतिसंयुक्तं स ज्ञेयो दत्रिमः सुतः ॥

पिता अथवा उसकी आज्ञासे माता जिस अपने योग्य और प्रसन्न पुत्रको संकल्प करके दूसरे को देदेवें वह दत्तक कहलाता है दत्तक अपने गोत्रका ९ वर्षतक की अवस्थावाला उसके माता पिताके सामने अग्निमें होमकर वैदिक विधिसे लेना चाहिये पीछे अपनी शाखाके अनुसार कुल रीति से उसका उपनयन करना चाहिये । सामयिक राजाकी आज्ञा लेनी भी आवश्यक है । परन्तु यदि अपने सहोदर भाई का पुत्र किसी तरहसेभी मिलजायतो कभी दूसरेका पुत्र दत्तक नहीं लेना यह मुनियोंका सिद्धान्त है.

सर्वेषामेकजातानामेकश्चेत्पुत्रवान्भवेत् ।
सर्वे ते तेन पुत्त्रेण पुत्रिणो मनुरब्रवीत् ॥
सर्वासामेकपत्नीनामेका चेत्पुत्त्रिणी भवेत् ।
सर्वास्तास्तेन पुत्रेण प्राह पुत्रवतीर्मनुः ॥

बहुतसे सहोदर भाइयोंमें एक भाई भी यदि पुत्रवाला हो तो सभी भाई उस के पुत्र से पुत्रवाले हैं । एक पुरुषकी कई पत्नी होवें उनमेंसे एक भी यदि पुत्रवाली हो तो वे सभी स्त्रियां उस पुत्रसे पुत्रवाली होती हैं । ऐसा मनु कहते हैं ।

व्यवहारमयूखमें लिखाहैः-

[भ्रातृ पुत्रः]·दत्तकस्तु परिणीत उत्पन्नपुत्रोपि भवतीति तातचरणाः। भाईका पुत्र विवाह किया हुआ हो चाहो पुत्र भी उसके उत्पन्न होगयाहो तौभी वह दत्तक होसकताहै। याज्ञवल्क्य मुनिके आशय-के अनुसार मिताक्षराकारका भी यही मत है कि भाईका पुत्र यदि दत्तक मिलसकै तो दूसरा कभी न लेना। मुनिलोग त्रिकालदर्शी हैं उनका कहना मनुष्योंको निस्सन्देह करना चाहिये भाईके शुक्रसे उत्पन्न हुआ पुत्र भाई ही है भाई अपने पिताकी मूर्त्ति है, यह सभी समझसकते हैं कि भाईके पुत्रके सामने दूरका बिरादर पितरोंसे अवश्य दूर होजाताहै। लोगोंका यह हठ और दुर्भाग्य ही समझना चाहिये कि वह भाईके पुत्रके रहनेपर जो दूसरेको दत्तक लेनेका अविचार करतेहैं। यह बड़े खेदकी बात है कि आज कल लोग जिसको चाहे उसको अपना दत्तक बनालेते हैं उससे पितरोंका उद्धार होना तो अलग रहा उलटा अधोगति होजातीहै। क्योंकि दत्तक लेने पर उस पुत्रका चूड़ाकर्म अपनी शाखाके अनुसार करना चाहिये फिर संस्कारोंमें प्रधान संस्कार उपनयन तो यत्नपूर्वक करना चाहिये, तभी दत्तक ठीक है नहीं तो वह दास तुल्य होजाताहै।

चूडोपनयसंस्कारा निजगोत्रेण वै कृताः।
दत्ताद्यास्तनयास्तेस्युरन्यथा दास उच्यते॥

यह व्यवहारमयूखमें साफ लिखाहै। परन्तु आजकल इन बातोंपर कुछ भी ध्यान नहीं दियाजाता, कई ठिकाने पर तो ऐसा देखागयाहै कि विधवा स्त्रियां प्रायः अपनी अज्ञानसावश ऐसे पुत्रको भी गोद लेलेतीहैं जिसकी जातिका भी पता नहीं लगता उससे जो अनिष्टकारी परिणाम होताहै उसका कोई उपायही नहीं है। धनियोंमें ऐसे उदाहरण प्रायः मिलते रहतेहैं। उनको इस बातका ध्यान नहीं रहता कि हमारा धन उत्तम रीतिसे सत्कार्य्यमें व्ययहो। द्रव्यकी तो तीन ही गति हैं सत्पात्रमें दान, भोग और नाश। यदि कोई धनी चांहै कि मेरा धन कभी नष्ट न हो तो उसके

लिये यही उपाय है कि वह विद्यालय, औषधालय, धर्मशाला इत्यादि परोपकारी कामोमें धनका व्ययकरै उससे "पात्रे दानं मनागपि" के अनुसार धन बहुत बढ जायगा जिससे दाताका सदा कल्याण ही होगा परन्तु धनके आने के साथ ही प्रमाद आजाताहै तब उस धनके साथ इतनी ममता होने लगती है कि लोभी मनुष्य अपने प्राणों से भी बढकर उस धनकी रक्षा करने लगता है, अन्तमें आग्नि, चोर और राजा उसके स्वामी होते हैं, कहिये कैसी विषम समस्या है। जो अविचारी मनुष्य अपने माता पिताके शुक्र शोणितसे बनेहुए भाईकी सन्तानको छोडकर दूसरेको दत्तक लेते हैं इससे न तो उनहींको कुछ लाभ होता न पितरही प्रसन्न होते, क्योंकि धर्मशास्त्रके अनुसार भाईका पुत्र ही सर्वथा अधिकारी (हकदार) है। यह व्यवहारसिद्ध बात है कि किसीका चाचा विना सन्तान मरजाय तो विना किसीके कहे हुए ही धर्मशास्त्रानुसार वह अपने चाचाके श्राद्ध करनेका अधिकारी है। इसी प्रकार ताऊ या चाचाके निस्सन्तान मरनेपर भी उसके द्रव्यका अधिकारी भतीजा है ही। शास्त्रकी ऐसी व्यवस्था न जान कर जो अपनी मनमानी इच्छासे दूरके बान्धवको दत्तक लेते हैं वह सर्वथा अनुचित कार्य्य करते हैं। इन्हीं सब बातोंको विचारकर स्त्रीको दत्तक लेनेका अधिकार धर्मशास्त्रकार नहीं देते। "न स्त्री पुत्रं दद्यात्प्रतिगृह्णीयाद्वान्यत्रानुज्ञानाद्भर्तुः" स्त्री पुत्रको दत्तक होनेके लिये न दे, न ले पर पति आज्ञा देगया हो तो लेवै। इस वशिष्ठस्मृतिसे भी मालूम पडता है) कि स्त्रीको दत्तक लेनेका अधिकार नहीं है क्योंकि दत्तकलेते समय कितने ही वैदिक मन्त्र ऐसे हैं जिनको स्त्री नहीं कह सकती, और संभव है कि-दीर्घदृष्टि न होनेसे स्त्री शास्त्रकी ओर न देखकर अपने अनुकूल चलनेवालेको ही दत्तक लेलेवे और क्या आश्चर्य है कि धनके लोभसे कुटिल मनुष्य स्त्रीकी बुद्धिको विरुद्ध करदें और नाना प्रकारकी मायाओंसे उसे छलकर कुमार्गमें प्रवृत्त करदें ऐसे उदाहरण एक नहीं कितने ही होगयेहैं जिनके अपयश (बदनामी) के वृत्तान्तोंसे उस समयके समाचारपत्र तथा न्यायालयोंकी मिसलें भरी

पडीहैं । अभी बहुत समय नहीं हुआ है एक नामी सेठ वैकुंठवासी हुए, उन का दत्तक जब, उस बडी धनराशिका उत्तराधिकारी हुआ तो उस धनकी रक्षा करने अथवा पिताकी भाँति सन्मार्गमें लगानेकी न उसकी रुचि ही थी न संस्कार ही . उसके ऐसे थे कि जो उसकी धार्मिक बुद्धि होती । बस, नाच तमाशे मद्यादि दुर्व्यसनोंमें धनका, अपव्यय होनेलगा कितनाही रुपया मुकद्दमेमें व्यय होगया, । वकील बैरिष्टरों की मुट्ठियां गर्म होनेलगीं अन्तमें ३० लाख रुपये न्यायालयसे दत्तकको मिलगये । पर इस धनराशिका भोग वह न करसका बल्कि थोड़े ही समयमें स्वयं क्षयरोगका बलि होगया । ईश्वर ही जाने कि इस दत्तकसे वैकुण्ठवासी सेठजीके आत्मा की क्या दशा हुई होगी विचारिये, दत्तक तो जड़मूलसे गया उसके पीछे भी उस धन तथा उसके भोगनेवालों की कुछ दुर्दशा बाकी नहीं रही । यही कारण है कि ऋषियोंने विधवाको दत्तक लेनेका निषेध कियाहै ।

उत्तम पक्ष तो यह है कि भारतवर्षमें जो कुछ भी द्रव्यपात्र हो उनको भाई भाइयोंमें सहोदर स्नेहके नाते पहिले तो अलग होनाही नहीं चाहिये और अलग होभी जायँ तो निस्सन्तान होनेपर अपने भाई या उसके पुत्रके नामपर अपने द्रव्य तथा, स्त्रीकी रक्षाका प्रबन्ध कर देना चाहिये जिससे उसके पीछे उसकी स्त्रीको इन बातोंमें कुछ करनेका अवसर ही न आवे । और स्त्रीधर्मकी शिक्षा तो स्त्री समाज भर को रहनी चाहिये जिससे विदुषी स्त्री अपना कर्त्तव्य स्वयं जानकर कभी ऐसे अधर्ममय कामोंमें रुचि न करैं । आज कल स्त्रीशिक्षाके लिये लोग बड़ा यत्न कर-रहे हैं पर अपनी सनातन स्त्रीशिक्षा जिसका वृत्तान्त हमारे पुराण और धर्मशास्त्र आदि में पग पग पर आताहै और जिसके भूलजानेसे ही स्त्रीसमाज शोचनीय दशाको प्राप्त होरहीहै उसीके उन्नति करनेकी आवश्यकता है ।

इससे स्वयं स्त्रीहीको चाहिये कि वह अपने पतिकी शुभ कामनासे ब्रह्मचर्यव्रतका पालन करै और जहां तक बनपड़े सूक्ष्म आहार कर अपने

देहको सुखाडाले जिससे विषयवासना बिलकुल नष्ट होजावे । यह भारतवर्ष, उसमें भी आर्यावर्त पुण्यकी भूमि है, इसमें किये हुए पुण्य और पाप प्रतिदिन बढते जाते और अपने कर्ता पुरुषको शुभाशुभ फल देते हैं। पिता पुत्र और स्त्री आदिका ऐसा संबन्ध है कि एकके कियेहुए कर्म दूसरेको अवश्य फल देते हैं। स्त्री तो पुरुषका वाम अंग है इसीसे धर्मशास्त्रमें लिखा है कि "पतत्यर्धं शरीरस्य यस्य भार्या सुरां पिबेत् ॥ पतितार्धशरीरस्य निष्कृतिर्न विधीयते ।" जिसकी स्त्री मद्य पीवे उसका आधा अङ्ग पतित होजाता है, पातकी आधे शरीरका कुछ प्रायश्चित्त नहीं है। जैसे किसीके देहमें बडा भारी घाव होजाय और उसकी तत्काल कोई चिकित्सा न कीजावे तो बढते बढते वह सर्वाङ्गको आक्रान्तकर पुरुषके प्राणोंतक को नष्ट कर देता है स्त्रीके दोष से स्वर्ग में गये हुए पुरुषकी भी अधोगति होजाती है। कहा भी है–

अमात्यदोषो राजानं भार्यादोषः पतिं यथा ।
तथा शिष्यकृतो दोषो गुरुं प्राप्नोत्यसंशयम् ॥

जैसे मन्त्रीका दोष राजाको, स्त्रीका दोष पतिको लगताहै उसी प्रकार शिष्यका पाप दीक्षा देनेवाले गुरुको भुगतना पडता है। हां एक प्रकार से दोष नहीं लगसकता वह यह है कि जैसे एक अंगुली में सांपका विष चढगया हो तो उसको उसी समय काटडालने से शेष अंगमें विषका संसर्ग नहीं होने पाता. इसी प्रकार दुराचारिणी स्त्रीका परित्याग होने से पतिकी रक्षा होसकती है। यह सब पतिके जीवित रहनेपर होसकता है पर जब विधवा ऐसे दुष्टकर्म करै तो विचारा पति तो इस कर्मभूमिमें है ही नहीं वह तो ऐसी भूमिमें गयाहै जहां केवल किये हुए कर्मों का भोग ही होसकता है उस समय वह अपने किये हुये ही कर्मोंके अधीन रहता है। हां, उसके पुत्र और पत्नी सदाचारी हों तो उसको सहायता भी मिलसकती है और उसके दुर्भाग्यसे वह अच्छे न हुए तो और भी नरकादि दुःख उस मृतप्राणीको भोगने पडते हैं। उस निरपराध पति को घनिष्ठ सम्बन्ध वश यद्यपि नरकादि यातना भुगतनी पडती हैं

पर उस विधवा अथवा दुराचारी पुत्रको भी यमका घोर दण्ड भोगना पडता है। बड़े खेदकी बात है कि इस संसार में जब मनुष्य सूर्य, चन्द्रमा, वायु, अग्नि आदि देवता और अपने हृदयमें रहनेवाले आत्माकी कुछ परवाह न कर पापकर्म करता है उस समय तो उसको कुछ फल नहीं मिलसकता क्योंकि-

नाधर्मश्चरितो लोके सद्यः फलति गौरिव।
शनैरावर्तमानस्तु कर्तुर्मूलानि कृन्तति॥
यदि नात्मनि पुत्त्रेषु न चेत्पुत्त्रेषु नप्तृषु।
नत्त्वेव तु कृतोऽधर्मः कर्तुर्भवति निष्फलः॥मनुः॥

इस संसारमें जो पाप किया जाताहै वह खेतीकी तरह तत्काल तो फल देता नहीं, धीरे धीरे जब वह बढता जाताहै तो पाप करनेवालेकी जड उखाड़ डालता है। पाप यदि करनेवालेको अपना फल नहीं देपाता तो उसके पुत्रको देता है, कदाचित् उसके भी शुभकर्म पूर्वजन्मके किये हों तो उसमें भी पाप अपना फल नहीं दिखापाता, परन्तु उसके पुत्र अर्थात् पापीकी तीसरी पीढीमें तो अवश्य अपना विषम काण्ड उपस्थित कर देता है। क्योंकि यह सिद्धान्त है कि कियाहुआ पाप कभी निष्फल नहीं होता। यहां खेद इतना ही है कि मनुष्य जब अज्ञान वश होकर पाप करने लगताहै उस समय विचारसे वह शून्य होजाताहै पर जब उस देहको त्यागकर धर्मराजके वशमें होकर नरकों की वेदना भोगताहै उस समय उसको पश्चात्ताप होता है। फिर क्या होसकताहै। इससे इस मनुष्य देह को पाकर सदा ऐसे ऐसे पापोंसे बचना चाहिये जो कि दूसरे लोकमें बाधक होकर अधोगतिमें डालें।

स्त्री जाति स्वभावसे ही कोमल है, उसको नीतिज्ञोंने अबला कहा है उसके हृदयमें दृढता नहीं, उसका कोई सिद्धान्त स्थिर नहीं, बल्कि दोषोंकी खानि स्त्री है। इसीसे मनु महर्षि उसके लिये रक्षाका उपाय यही समझते हैं कि-

बाल्ये पितुर्वशे तिष्ठेत्पाणिग्राहस्य यौवने।
पुत्राणां भर्तरि प्रेते न भजेत्स्त्री स्वतन्त्रताम् ॥

जब तक बाल अवस्था हो कन्या पिताके अधीन रहे, युवावस्थामें पतिके वेशमें रहै, यदि पति न रहै तो पुत्रोंके अधीन होकर रहै पर स्वाधीन कभी न हो। क्योंकि स्त्रीका स्वतन्त्र होना ही उसके नाशका कारण है गोसाई तुलसीदासजीने भी कहाहै:—

"महा वृष्टि चलि फूटि कियारी। जिमि स्वतंत्र हुइ बिगरहिं नारी।"
धन्य हैं वह स्त्रियां जो अपने स्वाभाविक दोषोंका विचार कर उनसे बचनेका सदा यत्न करतीहैं—स्त्री समाजमें पातिव्रत धर्मकी जागृति कर उसकी उन्नति करतीहैं। देखिये, भगवती जानकीजी जब अनुसूयाजीसे मिलीहैं तो इसी पातिव्रतकी शिक्षा उन्होंने जानकीजीको दीहै। उपसंहारमें मेरी प्रार्थना मारवाडी समाजसे है, कि जिस प्रकार व्यापारकुशलता दानवीरता आदि उत्तम २ गुण आपमें हैं उसी प्रकार स्त्रीस्वातन्त्र्य दोष भी बहुत बढता जाताहै जो अनर्थका मूल है। विवाहादि उत्सवोंके समय निर्लज्जतायुक्त सीठने आदि स्वतन्त्रताकी कुरीतियां जो आपलोगोंमें चलगयीहैं वे एकदम बन्द होजानी चाहियें। निःसन्देह विवाहादि मंगलकार्य आनन्दकी मूर्ति हैं, पर यह कोई नियम नहीं कि स्त्री लोग उस समय मर्यादासे बाहर होजायं। कोई ग्राम्यप्रकृतिवाला मनुष्य भले ही उन अश्लील गानोंसे प्रसन्न हो पर बुद्धिमान् लोगों को उनसे घृणा होती है। जिन स्त्रियोंका धर्म है कि उठने बैठने हँसने बोलने आदि सब व्यापारोंमें परम सभ्यता नम्रता सिधाई और लज्जा ही प्रधान रहै उनके शीलमें धब्बा लगानेवाली उद्धत बातें कभी मान्य तथा प्रशंसनीय नहीं हो सकतीं। दोषोंके अधिक विस्तारकी आवश्यकता नहीं है अपना अभ्युदय चाहनेवाले निर्दोष बननेका यत्न करैं और ईश्वर इस कार्यमें उनकी सहायता करै यही प्रार्थना है।

यहां उत्तम स्त्रियोंके कर्तव्य पर दो श्लोक लिखकर इस लेखको समाप्त करताहूं।

गतागतकुतूहलं नयनयोरपाङ्गावधि
स्मितं कुलनतभ्रुवामधर एव विश्राम्यति।
वचः प्रियतमश्रुतेरतिथिरेव कोपक्रमः
कदाचिदपि चेत्तदा मनसि केवलं मज्जति॥ १॥

कुलीन स्त्रियोंकी नेत्रोंकी गति, केवल अपने आंखोंकी छोर तक, हँसना होठोंतक, बोलना केवल अपने पतिके सुननेयोग्य अर्थात् इतने धीरे बोलना कि पति तो सुनसकै और कोई न सुनपावे, कोप कदाचित् आभीजाय तो अतिथि की भाँति उसी समय चलाजाय अथवा देख भी न पड़े मनहींमें गुप्त होजाय।

पदन्यासो गेहाद्बहिरहिफणारोपणसमो
निजावासादन्यद्भवनमपरद्वीपतुलितम्।
वचो लोकालभ्यं कृपणधनतुल्यं मृगदृशः
पुमानन्यः कान्ताद्विधुरिव चतुर्थीसमुदितः॥ २॥

कुलीन स्त्रियोंको अपने घरसे बाहर पैर रखना मानो साँपकी फनपर पैररखना है। अपने घरसे दूसरेके घरपर जाना दूसरे टापूमें जानेके समान है। उनका बोलना तौ कोई सुनही नहीं सकता जैसा कृपणके धनको कोई नहीं देखसकता। कुलललनाको दूसरे मनुष्यका देखना भादों मासकी चतुर्थीके चाँदको देखनेके समान है। आशय यह है कि कुलीन पतिव्रता स्त्री दूसरे पुरुषको देखना भी पाप मानती है।

॥ इति॥

हरिदत्तशर्म्मा कूर्माचलीय.

विधवाधर्म।

सनातन धर्मके सिद्धान्तोंके अनुसार स्त्री और पुरुष उसी भगवान्के देहसे साथ ही उत्पन्न हुए माने गये हैं जैसा कि महर्षि मनुने कहा है–

"द्विधा कृत्वात्मनो देहमर्धेन पुरुषोऽभवत्।
अर्धेन नारी तस्यां स विराजमसृजत्प्रभुः॥"

वह परमेश्वर अपने देहके दो विभाग करके आधेसे पुरुष होगया आधे से स्त्री, और उसी स्त्रीमें विराट्की सृष्टि की। मनुष्यकी विचित्र बुद्धिको देखकर इसमें कुछ सन्देह नहीं कि अवश्य वह ईश्वरहीके देहसे उत्पन्न हुआ है। जब वह आदि सृष्टिमें ईश्वरसे उत्पन्न हुआ था उस समयके पुरुष और स्त्रीमें वैसे ही गुण थे इसमें सन्देह नहीं, पर अब कालक्रमसे बहुत ही अन्तर पड़गया है। इस समयमें क्या स्त्री क्या पुरुष दोनों ही अपने अपने कर्मोंसे विमुख होगये हैं यहां तक कि वह अपनेको भूलही गये हैं। स्त्रियोंका मुख्य धर्म सती होना था वह वन्द होगया है इसका परिणाम भी वैसाही अनिष्ट हुआ है। आजकल जो विधवाओंकी संख्या बढ़तीजाती है इसका कारण यही है कि वह यथार्थ रीतिसे अपने धर्मपर आरूढ नहीं हैं इससे संक्षिप्त कर्तव्य (विधवाओं) के विषयमें लिखा जाता है–रामायण आदि इतिहासोंसे यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि–

न पुत्रमरणं केचिद्द्रक्ष्यंति पुरुषाः क्वचित्।
नार्यश्चाविधवा लोके तस्मिञ्छासति पार्थिवे॥

भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके समयमें कोई भी मनुष्य पुत्रका मरना नहीं देखते थे और कोई भी स्त्री विधवा नहीं होती थी। इससे सिद्ध होता है कि मनुष्य जब अपने अपने धर्ममें आरूढ रहते तो अकालमृत्यु आदि उनको नहीं होने पाती फिर विधवा क्यों कर हों। विधवा होना बडे भारी पापोंका परिणाम है। कौन ऐसा पाषाणहृदय मनुष्य होगा जो इन बाल-विधवाओंका दुःख देख, दुःखसन्तप्त न होजावे। पर क्या कियाजावे उनके

दुःखसे सहानुभूति करनेके सिवाय और चारा ही क्या है। यही दुःख विचारकर हमारे महात्मा मुनियोंने सती होनेकी प्रथा रक्खी थी। यद्यपि उस समय यह कर्म बड़े साहसका समझा जाता था परन्तु जो आर्यललनाएं पतिदेवतायें कही जाती हैं उनका सती होना ही परम सौभाग्य और प्रशंसनीय कर्म था और है। उन आदर्श रमणियोंका यह स्वभाव ही होगया था कि वह पतिके न रहनेसे संसारको शून्य समझतीं और क्षणमात्र भी वैधव्य दुःखको भोगने नहीं पातीं थीं। धन्य वह समय था जब भारतवर्षमें घर घर पतिव्रतादेवी—वह गृहलक्ष्मी गृहस्थाश्रमको अलंकृत किये थीं। पर अब तो महा शोचनीय दृश्य उपस्थित होगया है, तुलसीदासजीका कहना कि "विधवा होय पाय तरुणाई" प्रत्येक स्थानमें प्रत्यक्ष होरहा है। यद्यपि इस समय भी बहुतसे परदुःखकातर महाशय विधवाओंकी ऐसी शोचनीय दशा देखकर उनके कष्ट निवारणके उपाय सोचते हैं पर उनके विचार नये ढङ्गके होनेसे वह विधवाओंके दुःखोंको शान्त तो नहीं करसकते बल्कि उनसे अधिक दुःख होनेकी संभावना है, इससे जो उपाय महात्मा मुनियोंने उनके लिये सोचा है वही ठीक है। मन्वादि महर्षियोंको अपनी सन्तानोंसे जैसी सच्ची सहानुभूति होसकती है उसीके अनुसार उन्होंने विधवाओंका कर्तव्य स्वयं कहदिया है और उसीके अनुसार उनका अभ्युदय होसकता है। बहुतसे महाशय विधवाओंका पक्षपात करतेहुए यह कह उठते हैं कि धर्मशास्त्र बनानेवाले मुनि पुरुष हैं यादि किन्हीं स्त्रियोंसे पूछा जाता तो वे कभी ऐसी सम्मति नहीं देसकतीं कि जो पुरुष अपनी समझसे उनके लिये देगये हैं। यह विना विचार कीहुई बात है जरा बुद्धिमानीके साथ विचारिये कि स्त्रियोंसे तो इस विषयमें परामर्श करनेकी बात ही नहीं है। क्या रोगीसे पूछकर उसकी इच्छासे औषधि देनी होती है? क्या रोगीको यह उचित नहीं है कि अपनी जानमालका भरोसा वह धार्मिक उत्तम वैद्यके ऊपर छोड दे? अवश्य ही उसको किसी माहत्मा परोपकारी वैद्यका ही आश्रय लेना पडेगा। इसीसे हमारे पूर्वपुरुष श्रीमन्वादि महर्षियोंने अपनी सन्तान विधवा-

ओंके लिये जो उपदेश किया है वह यहां हिन्दू कुलीन विधवाओंके लिये यथावत् लिखा जाता है। जो विधवाबन्धु बनकर विषयवासनाकी शान्ति द्वारा उनका दुःख दूर करना चाहते हैं उनको समझना चाहिये कि–

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धयेत्।

कामकी सेवासे कभी कामकी तृप्ति नहीं होसकती, बल्कि घृतकी आहुतिसे जैसा अग्नि प्रदीप्त होकर और भी प्रचण्ड होजाताहै इसी प्रकार इन्द्रियोंकी सेवासे कभी तृप्ति नहीं होती, होतीहै तो केवल शान्तिसे होतीहै। इसीसे स्त्री जातिको सोचना चाहिये कि हम परमेश्वरके सङ्कल्पसे उत्पन्न हुई हैं, हममें वह दिव्यगुण सब वर्तमान हैं जो हमारे सृजनेवालेमें हैं। स्त्री माया स्वरूप है उसको अपनी शक्तिका भली भाँति ज्ञान हो तो वह ऐसे ऐसे उत्तम कर्म करसकतीहै कि बड़े बड़े महात्माओंको भी वह कर्म कठिन मालूम पड़ें। मनुजीने स्त्रियोंको ब्रह्मचर्य पालन करनेकी शिक्षा करके उनकी तुलना बड़े मुनीश्वर ऊर्ध्वरेताओंके साथ कीहै।

अनेकानि सहस्राणि कुमारब्रह्मचारिणाम्।
दिवं गतानि विप्राणामकृत्वा कुलसन्ततिम्॥
मृते भर्तारि साध्वी स्त्री ब्रह्मचर्ये व्यवस्थिता।
स्वर्गं गच्छत्यपुत्राऽपि यथा ते ब्रह्मचारिणः॥

अर्थात् हजारों कुमार ब्रह्मचारी गृहस्थ धर्म न करने (पुत्रोंको उत्पन्न न करने) पर भी स्वर्गको प्राप्त हुए थे इसी प्रकार पतिके मर जाने पर पतिव्रता स्त्री ब्रह्मचर्य व्रत करके पुत्रोंके बिना भी स्वर्गको जातीहै। अब विधवाओंका कर्तव्य संक्षिप्त रीतिसे लिखतेहैं।

विधवा कर्तव्यम् विष्णुः-

"मृते भर्तरि ब्रह्मचर्य्यं तदन्वारोहणं वा" ब्रह्मचर्य मैथुनवर्जनं ताम्बूलादि वर्जनञ्च यथाह प्रचेताः-"ताम्बूलाभ्यञ्जनं चैव कांस्यपात्रे च भोजनम्। यतिश्च ब्रह्मचारी च विधवा च विवर्जयेत्।"

विष्णुस्मृतिमें लिखाहै कि जिस स्त्रीका पति मरजाय वह अपने पतिके साथ एक चितामें भस्म होजाय, यदि पुत्र विद्यमान हो और कलियुगमें सती होना निषिद्ध समझ कर अनुगमन न करै तो ब्रह्मचर्यव्रतसे रहै। पुरुषका सहवास छोड़देना पान तथा हविष्यान्नभिन्न अन्न तथा निषिद्ध शाक इत्यादि छोड़देना ब्रह्मचर्य कहाजाताहै प्रचेता मुनि कहतेहैं-पानखाना, काजल वा सुर्मा लगाना, कांसीके बर्तनमें भोजन करना, इतनी चीज संन्यासी ब्रह्मचारी और विधवा छोड़देवें किसीका मत है कि अंजनका निषेध वैद्यक शास्त्रमें कहेहुए अंजनसे है।

एकाहारः सदा कार्यो न द्वितीयः कदाचन।
पर्यङ्कशायिनी नारी विधवा पातयेत्पतिम्॥

शुद्धितत्त्व।

विधवाको नित्य एक समयमें एक ही अन्नका भोजन करना चाहिये, यह उसकी इच्छा पर निर्भर है, चाहै तो मध्याह्नमें हविष्यान्नका भोजन करै, अथवा नक्तव्रत करै। यदि विधवा चारपायीमें सोवे तो वह अपने पतिको स्वर्गादि शुभगतिसे गिरादेतीहै।

गन्धद्रव्यस्य संयोगो नैव कार्यस्तया पुनः।
तर्पणं प्रत्यहं कार्यं भर्तुः कुशतिलोदकैः॥

सुगन्धिपुष्प तैल इत्यादि गन्धद्रव्यका संयोग विधवा कभी न करै, पुत्र पौत्रादि तर्पण करनेवाला न हो तो विधवा स्वयं अपने पतिका तर्पण नित्य कियाकरै।

वैशाखे कार्तिके माघे विशेषनियमं चरेत् ।
स्नानं दानं तीर्थयात्रां विष्णोर्नामग्रहं मुहुः ॥

वैशाख कार्तिक तथा माघमासमें खास खास नियमोंको करै जो कार्तिकमाहात्म्यादि ग्रन्थोंमें लिखेहुएहैं। स्नान, दान, तीर्थयात्रा क्षण-क्षणमें विष्णुभगवान्‌का नाम जपै वा स्मरण करै।

ब्रह्मवैवर्तपुराणके कृष्णजन्मखण्ड ८३ अध्यायमें लिखाहै—

ब्राह्मणी पुत्रहीना या भवेन्निष्कामिनी सदा।
एकभक्ता दिनान्ते सा हविष्यान्नरता सदा ॥

जिस विधवा ब्राह्मणीके पुत्र न हो वह निष्काम भक्ति करै। दिनके अन्त भागमें हविष्यान्नका भोजन करै। यहां ब्राह्मणीपद उपलक्षण है इससे क्षत्रिय और वैश्यवर्णकी स्त्रियोंका भी यही नियमहै।

न धत्ते दिव्यवस्त्रं च गन्धद्रव्यं सुतैलकम् ।
स्रजश्च चन्दनश्चैव शंखसिन्दूरभूषणम् ॥

सुन्दर चमकदार बहुमूल्य वस्त्र न पहिरै इत्र कस्तूरी आदि तथा चमेली आदि के तेलका उपयोग न करे। पुष्पमाला चन्दन शंख सिन्दूर और आभूषणों को धारण न करै।

त्यक्त्वा मलिनवस्त्रा स्यान्नित्यं नारायणं स्मरेत् ।
नारायणस्य सेवां च कुरुते नित्यमेव च ॥

मैले कुचैले कपड़े पहिरै। सदा विष्णुका स्मरण तथा उन्हीं की सेवा करै

तन्नामोच्चारणं शश्वत्कुरुतेऽनन्यभक्तितः ।
पुत्रतुल्यश्च पुरुषं सदा पश्यति धर्मतः ॥

केवल विष्णुकी भक्ति पूर्वक सदा हे कृष्ण ! हे वासुदेव ! इत्यादि उनके नामोंका स्मरण करै। संसारके पुरुष जो अपनेसे बड़े हों उनको पिता-

समान, बराबरवालोंको भ्रातासमान तथा अपनेसे छोटी अवस्थावालोंको पुत्रकी समान देखै।

मिष्टान्नं च न भुङ्क्ते सा न कुर्याद्विभवं व्रजम्।
एकादश्यां न भोक्तव्यं कृष्णजन्माष्टमीदिने॥

मीठे तथा उत्तम रसवाली चीज विधवाको नहीं खानी चाहिये ऐश्वर्यका सामान भी कभी नहीं करना चाहिये। एकादशी तथा श्रीकृष्णजन्माष्टमी के दिन निराहार व्रत रहना चाहिये।

श्रीरामस्य नवम्यां च शिवरात्रौ पवित्रया।
अघोरायां च प्रेतायां चन्द्रसूर्योपरागयोः॥

रामनवमी (चैत्रशुक्ल ९) शिवरात्रि (फाल्गुणकृष्ण १४) भाद्रपद-की कृष्णचतुर्दशी, आश्विनमासकी अमावास्या तथा चन्द्र और सूर्यग्रहणके दिन विधवा स्त्री उपवास करै।

भृष्टद्रव्यं परित्याज्यं भुज्यतेऽपरमेव च।
ताम्बूलं विधवास्त्रीणां यतीनां ब्रह्मचारिणाम्॥
संन्यासिनां च गोमांसं सुरातुल्यं श्रुतौ श्रुतम्॥

भाड़का भूँजा अन्न नहीं खाना चाहिये शुद्ध हो तो खासकतीहै परन्तु पानखाना तो वेदमें विधवा संन्यासी और ब्रह्मचारियोंके लिये गोमांस तुल्य समझागयाहै।

रक्तशाकं मसूरश्च जम्बीरं पर्णमेव च।
अलाबूर्वर्तुलाकारा वर्जनीया च तैरपि॥

लालरंगका शाक गाजर मूली आदि, मसूरकी दाल जम्बीर नीबू पला-शकापत्र गोल तूंबी (शाक) इतनी चीज छोड़नी चाहिये।

पर्यङ्कशायिनी नारी विधवा पातयेत्पतिम्।
यान आरोहणं कृत्वा विधवा नरकं व्रजेत्॥

विधवा यदि चारपाईमें सोवे तो अपने पतिकी अधोगति करतीहै यदि सवारीमें चढकर कहीं जावे तो नरकमें जातीहै।

न कुर्यात्केशसंस्कारं गात्रसंस्कारमेव च।
केशवेणीजटारूपं तत्क्षौरं तीर्थकं विना॥

सुगन्धित तैल लगाना, धूप आदि धूनी देना इत्यादि बालोंका संस्कार तथा चन्दन उबटन इत्यादि से देहका संस्कार विधवा न करै बालोंकी लट न बाँधे तीर्थ यात्राको छोड़कर बालोंको न मुड़ावे।

तैलाभ्यङ्गं न कुर्वीत नहि पश्यति दर्पणम्।
मुखञ्च परपुंसां च यात्रां नृत्यं महोत्सवम्॥
नर्तकं गायनं चैव सुवेशं पुरुषं शुभम्॥

विधवा तेलका उबटन न करै। आइना न देखै दूसरे मनुष्योंका मुख न देखै। नाच तमाशा इत्यादि उत्सवोंको भी न देखै। नाचनेवाले गाने वाले तथा सुन्दर पुरुषको कभी न देखै।

मनु कहतेहैं—

यस्मै दद्यात्पिता त्वेनां भ्राता वाऽनुमते पितुः।
तं शुश्रूषेत जीवन्तं संस्थितञ्च न लंघयेत्॥

पिता अथवा ज्येष्ठ भ्राता कन्याका विवाह जिसके साथ करादें वह विवाहिता कन्या जब तक उसका पति जीतारहै उसकी सेवा करै और उस के मरजाने पर उसका उल्लंघन (व्यभिचारादिसे) न करै।

इस प्रकार अनेक धर्मशास्त्र पुराण इतिहासोंका एक स्वरसे उपदेश है कि स्त्रीका जब तक पति रहताहै उसको देवता तुल्य मानकर देह वाणी और मनसे उसकी सेवा करै, उसके मरने के पीछे सती होजाय। आज-कल कलिकाल है मनुष्योंके अन्तः करण दुर्बल होगये और होते जाते हैं इसमें सती होनेका साहस स्त्रियें न करसकेंगी इससे मुनियोंने ब्रह्मचर्य व्रतका पालन करना उनके लिये श्रेष्ठ कहा है। दुर्भाग्यसे यदि

स्त्रियां इस व्रतको न पालसकें तो उनके लिये महा अनिष्ट है, क्योंकि व्यभिचार दोष ऐसा है कि मनसे भी यदि स्त्री पर पुरुषका चिन्तन करै तो उसे प्रायश्चित्त करना पडताहै फिर देह सम्बन्धका तो क्या कहना है।

अपत्यलोभाद्या तु स्त्री भर्तारमतिवर्तते।
सेह निन्दामवाप्नोति पतिलोकाच्च हीयते॥ मनुः॥

जो स्त्री कामवासना अथवा सन्तानके लोभसे अपने पतिका अनादर करके परपुरुषका सङ्ग करतीहै इस लोकमें कुलांगनाओंके समाजमें उसकी बडी निन्दा होती है और इस संसार को छोडकर पतिव्रताओं को स्वर्गमें जो पतिलोक मिलताहै वह कभी व्यभिचारिणियोंको नहीं मिल-सकता। क्या कोई भी बुद्धिमती कुलललना ऐसे तुच्छ व्यभिचारकर्म को मनमें भी लासकतीहै? कभी नहीं। यह भारतवर्ष बडी पवित्रभूमि है, इसमें थोडा भी पुण्य करने से बहुत बढजाताहै, जो पुण्यशीला रमणियां इस लोकमें केवल अपने शीलकी रक्षा कर सकती हैं—एक पातिव्रत धर्मकी ही सुदृढ उपासना कर सकती हैं उनके लिये किसी बातकी कमी नहीं है। देवता लोग भी पतिव्रताओंकी प्रशंसा करते हुए उनकी इच्छाओंको पूरी करतेहैं। यदि दुर्भाग्यवश स्त्री लोग अपना आचरण न सुधार सकें—यदि क्षणिक कामवासनासे अपने शीलकी रक्षा न करसकें तो इस कर्मभूमिमें पाप भी प्रति दिन बढते बढते ऐसा भयंकर रूप धारण करतेहैं कि अनेक जन्मोंतक उनका दुष्ट परिणाम नरकादि दुःख भोगना पडता है।

क्या मनुष्य क्या स्त्री जितना जितना विचारसे चलते हैं उतनीही उतनी उनकी बुद्धि भी सुधरती जातीहै और हमारे धर्मशास्त्र पुराणोंमें कही हुई शिक्षा उनको हित जान—पडतीहै। जब वह उन बातोंका आचरण करने लगतेहैं तो उन पुण्यकर्मोंके प्रभावसे एक अद्वितीय आनन्द मनमें होता जाताहै। जिसके आगे संसारके कामसुख आदि अति तुच्छ

मालूम पडने लगतेहैं । इससे भारतवर्षकी स्त्रियोंको चाहिये कि वह शास्त्रोक्त रीतिसे अपने आह्निक (नित्यकर्म) के अनुसार चलें तो बडा अपूर्व बल उनको प्राप्त होगा जिससे किसी बातकी भी कमी उनको नहीं रहजावेगी । हमारे पुराण इतिहासोंमें सीता, सावित्री, दमयन्ती, गान्धारी आदि अनेक पतिव्रताओंके उपाख्यान इसी वास्ते लिखे हुएहैं कि सभी स्त्रियां उनको विचारकर आचरण करें तो स्वयं देखेंगी कि कैसा अपूर्व आनन्द और बल उनको प्राप्त होताहै । इसी बलके लाभके लिये व्यास महर्षि ने इतने इतिहास रचेहैं । हमारी स्त्री समाज की उन्नति अपने ही हाथमें है वह चाहें तो इस समय भी धर्माचरणसे रहकर अपने भावी सन्तांनों को ऐसा बनासकतीहैं कि जो सदा धर्मात्मा बलवान्न यशस्वी होकर अपना और संसारका उपकार कर सकेंगे ।

॥ इति ॥

हरिदत्तशर्म्मा कूर्माचलीय.



॥ श्रीः ॥

श्रीभगवान्‌के अवतार और लीलाओंका तत्त्व।

दोहा--शीश मुकुट माथे तिलक, कुण्डल श्रवण मझार
कर मुरली वनमाल उर, भक्तन प्राणअधार ॥१॥
राधावर ब्रजराज प्रभु, गोपिन जीवनमूल ॥
रसिकविहारी सांवरे, सदा रहो अनुकूल ॥२॥

श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धमें भगवान् कृष्णचन्द्रके चरित्र बडे गूढ विस्तारके साथ भगवान् वेदव्यासजीने निरूपण किये हैं, गीतामें भगवान्‌की प्रतिज्ञा है कि मैं साधुओंके रक्षा करने दैत्योंको मारने और धर्मके स्थापन करनेके निमित्त युग युगमें अवतार लेता हूं। इस कारण कृष्णावतारमें इन सब प्रतिज्ञाओंका पूर्ण रीतिसे निर्वाह किया है, भगवान्‌की कोई लीलाभी विना प्रयोजन नहीं है. सबमें गूढ तत्त्व और ज्ञान भरा हुआ है, यह किसी प्रकार विषय युक्त चरित्र नहीं है. साक्षात् मुक्तिका देनेवाला है, कारण कि जो ग्रन्थ जीवरूप परीक्षित्‌की मुक्तिके निमित्त वर्णन किया गया है उसमें संसारके विषयोंका निरूपण होना असंभव है। और फिर जगदात्मा शुकदेवजीके मुखसे रागवर्द्धक कथानक कभी निर्गत नहीं हो सकता; इस कारण उन्होंने जो कुछभी कहाहै, वह प्राणियोंके कल्याणके निमित्तही कहा है इसमें कुछभी संदेह नहीं है. पूतनालीलामें यह निरूपण किया है कि देखो जो स्तनोंमें विष लगाय मुझे दूध पिलाने आई उसकी माताकी समान गति की, फिर जो कोई पुष्प फलादिसे भक्तिपूर्वक मेरा अर्चन करते हैं उनकी गतिमें सन्देह क्या है ? कालीदमनलीलामें यमुनाकी शुद्धि तथा अहंकाररूपी सर्पका दमन करके यमके भय मिट जानेका उपदेश किया है. अर्थात् गोपिका जो.वेदोंके मंत्र हैं ऋचा हैं वे सब ब्रह्मपरत्व ह

उनकी इच्छा कृष्णके साक्षात् करनेकी थी, गोपीरूपजीव भगवान्की प्राप्तिके निमित्त यमराजकी भगिनी यमुनामें स्नान करती हैं और अपनी सजाति होनेसे यमुनाकी प्रार्थना करती हैं कि तेरी कृपासे तो यमका भय मिट जायगा तब संसारसे पृथक् होनेपर भगवान्का दर्शन होगा, जिस समय प्राणी परमात्माकी प्राप्तिकी इच्छा करता है तब उसको पार्थिव पदार्थ और उसके विकारोंको त्यागना पडता है. यही भगवान् कहते हैं कि जिसपर मेरी कृपा होती है क्रम २ से मैं उसका संसारी धन हरण कर लेताहूं, जिससे कि पंच कोशोंमें प्रथम इसीसे अन्तःकरण आच्छादित है जब गोपिका स्नान करती थीं और ध्यानमें मग्न थीं और जलमें डुबकी लगाये थीं जो कि समाधि थी उसी समय भगवान्ने आनकर उनके पार्थिव वस्त्र हरण किये और संसाररूपी वृक्षके ऊपर लटकाय आप उससे ऊंचे स्थित हुए और इच्छा की कि इन गोपिकाओंको पाचों तत्त्वोंसे पृथक् कर निज रूपकी प्राप्ति कराऊं, जिस समय गोपिका समाधिरूप डुबकीसे बाहर हुई तब उनको फिर पार्थिव वस्त्रोंकी इच्छा हुई और उन्हींकी खोज करने लगीं, परन्तु जब न दीखे तब ऊर्ध्वदृष्टि करनेसे वस्त्र और वृक्षके शिखरपर कृष्णका दर्शन हुआ और भगवान्को पति बनानेके दृढ मनोरथपरभी संसारी आच्छादन वस्त्रही मांगे, तब भक्तोद्धारी श्रीविहारीजीने उनका अपक्क योग जानकर उनको जलतत्वसेभी निकालकर अग्नितत्वमें शोधनकी इच्छा करी, जैसे लिखा है कि "ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात् कुरुतेऽर्जुन[1]" जिस समय भगवान्के हठ करनेसे जलसे बाहर आने लगीं, तब हाथोंसे अंग छिपाये बाहर हुई, भगवान्ने यह समझकर कि "अथोदरमन्तरं कुरुते तस्य भयं भवति, द्वितीयाद्वै भयं भवति" इति श्रुतेः। मैं सर्वज्ञ और सर्वव्यापी हूं मुझसे अन्तर रखना इनके ज्ञानमें हीनता है, इससे इनका अज्ञान दूर करना चाहिये यही विचार कर बोले 'कीनो तुम अपराध भानुको कर जोडो उनके ताईं' नग्न नहानेके अपराधसे प्रायश्चित्त है तुम हाथ जोडो, सूर्यके सन्मुख कर

---

१ हे अर्जुन! ज्ञानकी अग्निसे सब कर्म दग्ध हो जाते हैं।

जुडवानेका भाव यह कि "योसावादित्ये पुरुषः सोसावहं खं ब्रह्म" यजुः। यह जो पुरुष सूर्यमें है सो मैं हूं जब गोपिका सूर्योपासनासे शुद्ध होकर प्राण रूपसे ध्यान करने लगीं तब आपने मुरलीके नादसे प्रबुद्ध कर आकाशसे परे किया जो "अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययम्" है, जब गोपिका इस पदवीको प्राप्त हो पूर्ण योगको प्राप्त हुई तब यह जानकर कि इनको अब संसारका कोई क्लेश बाधा न देगा यह जीवन्मुक्त हुई भगवान्ने लोकसंस्थाके निमित्त वस्त्र दे दिये और यहभी कहा शरद्तुम तुमको आत्मारामरूपसे अपना स्वाराज्य प्रदान कर ऐश्वर्यदर्शन कराऊंगा, अब तुम जाकर मेरा भजन करो, यह सुन गोपिका प्रसन्न हो घर गईं, यह लीला सर्वथा जीवका आवरण दूर कर मुक्ति प्राप्त करानेके निमित्त है कुछ विषयसुखकी कथा नहीं है, कारण कि ईश्वर सर्वव्यापी है वह बाहर भीतर सर्व व्याप्त है "तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्" इति श्रुतेः। फिर वह है कहां नहीं जिसे देखता, इससे ज्ञान देनेके निमित्त है।

औरभी देखो गोपियोंने श्रीकृष्णको अपना पति होनेके निमित्त कात्यायनीका व्रत किया था तौ जब कर्मका फल मिलना शास्त्रसिद्ध है तब गोपियोंको इस कर्मका फल क्यों न मिले, उस कर्मफलप्राप्तिमें एक बात यह प्रतिबन्धक थी कि वे नंगी होकर स्नान करती थीं, भगवान्ने यह विचारा कि, यह मूर्ख गोपी नग्न नहानेका दोष न विचार कर जलमें प्रवेश करती हैं, इस कारण इनका व्रत भंग होता है इससे इनको शिक्षा देकर कर्मफलका भागी करना चाहिये इससे कर्मफल देनेको वहां गये और वस्त्र लेकर वृक्षपर चढ गये, इससे एक तौ यह शिक्षा दी कि तुम नंगी होकर स्नान करती हो, यदि कोई वस्त्र उठाय ले जाय तौ कैसा हो किस प्रकार घर जा सकोगी, दूसरे शास्त्रीय शिक्षा दी कि नग्न होनेसे अपराध होता है, फिर जब गोपियोंने सर्वस्वात्मनिवेदन किया तब भगवान् उनपर बडे प्रसन्न हुए, कारण कि सर्वस्वात्मनिवेदन और शुद्ध अनुराग यही भगवत्प्राप्तिका सोपानस्वरूप है, सर्वस्वरूप लाज स्त्रियोंने प्रदान की इससे एक तौ प्रेमयुक्त कर्मकाण्डका अनुष्ठान पूरा हुवा, दूसरा सर्वात्मनिवेदन नवम भक्तिका अनुष्ठान पूरा हुआ, गोपियोंने उनको पतिभावसें

भजा इस कारण भगवान्ने उनकी अभिलाषा पूर्ण की, इससे उपदेश है कि प्रथम जीवकी रुचि कर्मकी ओर होनी चाहिये, और यदि उसके साथ भगवत्प्रेम हो तौ भगवान् उसकी च्युतिको शोधन कर अनुष्ठान पूरा कर देते हैं, जिससे अन्तःकरण निर्मल होकर, यह जीव भगवान्को सर्वस्व अर्पण करता है, तब इसको सब कामनाकी प्राप्ति होती है "सोऽश्नुते सर्वान् कामान्" "ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्" गीताके अनुसार जो जैसी भावना करतेहैं मैंभी उसी प्रकार उनको भजताहूं। तौ जिनके रोममें कोटि २ ब्रह्माण्ड हैं तौ उनमें एक ब्रह्माण्डके लघु खण्डके नियममें ईश्वर तौ बद्ध नहीं हो सक्ता, केवल अभिलाषानुसार फल देते हैं, नन्द यशोदा वसुदेव देवकीने पुत्ररूपसे इच्छा की वैसेही उनको फल दिया, यद्यपि गोपियोंको भगवत्प्राप्ति कामसम्बद्ध है परन्तु यह काम बन्धनजनक नहीं है, यथा "न मय्यावेशितधियां कामः कामाय कल्पते। भर्जिताः क्वथिता धानाः प्रायो वीर्याय नेष्यते॥" मुझमें मन लगानेवालोंका काम कामके निमित्त नहीं होता किन्तु औटाये वा भुनें धानोंकी समान फिर उनके अंकुर नहीं होते और जिसका सर्वस्व आत्म-निवेदनरूप नहीं है उससे स्वीकार नहीं करते जैसे माथुरियोंकी स्त्रियोंको बिदा कर दिया और आत्मसमर्पणवाली गोपियोंको स्वीकार किया, माथुरियोंकी स्त्री लौट गईं परन्तु जब रासमें आईं गोपियोंको लौटनेको कहा तब तौ वे प्राण त्यागन करनेमें तत्पर हुईं इससे वस्त्रहरण भक्ति और शिक्षाके निमित्त है।

जो उन्हें अवतार नहीं मानकर यह कामलीलाही मानते हैं उनको यह विचार करना चाहिये कि यह लीला छठे वर्षमें की है, जब कामभाव प्रगट नहीं हो सकता और सातवें वर्षमें गोवर्द्धन धारण किया है, जैसा भागवतमें लिखा है "क सप्तहायनो बालः" इत्यादि इससे निर्भ्रान्त होकर भक्ति करनी चाहिये, वह प्रभु हैं, अखण्ड ब्रह्म हैं,ऐश्वर्यसे चाहे जैसा रूप धारण कर लेते हैं, गोवर्द्धन धारणसे इन्द्रका मद चूर्ण और अपनी अर्चा-की प्रवृत्ति करी, वरुणलोकसे नन्दजीको लाये इत्यादि जो कुछ लीला उनमें अनेक कारण लगे हुए हैं, इसी प्रकार रहस्य लीला है, जिसका

नामही रहस्य है, उसका गूढ भेद सर्व साधारण कैसे जान सकते हैं, प्रायः वेद शास्त्र पुराण सबहीमें रहस्य होता है, इसी कारण भाष्यादि और बृहदारण्यकादिमें "साङ्गाः सरहस्याः" ऐसे पद देखनेमें आते हैं, इस समय गुरुजनोंसे ग्रन्थोंको न पढकर भाषामात्रसे ग्रन्थोंका मर्म जानना चाहते हैं और आस्तिकबुद्धिसे पूछनेमें लजाते हैं। प्रसन्न होना तौ दूर रहा उलटे सन्देहमें पड जाते हैं, इससे ग्रन्थका तात्पर्य ध्यानमें नहीं आता है और इस समय देखा देखी प्रायः लोग टीका करनेसेहीं अपनेको परम कृतार्थ मानने लगते हैं, चाहे स्वयं न भी पढे हों परन्तु किसीसे कुछ देदिवाय उलटा सुलटा नाममात्रका ग्रन्थ बनाय नाम तौ करही लेते हैं कि हमनेभी ग्रन्थ बना लिया, फिर ऐसे ग्रन्थोंसे क्या लाभ हो सकता है, जब टीकाकारही ऐसे हैं और लेने प्रकाश करनेवालेभी नाममात्रका ग्रन्थ चाहिये इतनेपरही संतुष्ट होनेवाले हैं, तब ग्रन्थका तात्पर्य कैसे ध्यानमें आ सकता है ? महर्षि व्यासदेवजीने श्रीमद्भागवत ग्रन्थ अधिकारिभेदसे नव रसोंसे पूर्ण रचा है और शृंगार रसमें श्रीमद्भागवतका रहस्य निरूपण किया है, रामावतारमें अनेक स्त्रियोंका मोहित होना, नारायणसे अप्सराओंका पतिवरणका वरदान मांगना तथा सम्पूर्ण वेदकी ऋचाओंकी श्रीकृष्णकी सेवाके निमित्त प्रगट होना और उन्हीमें चित्तकी वृत्ति लगाना यह बात श्रीमद्भागवत तथा दूसरे पुराणोंसे भी स्पष्ट है, रहस्यपंचाध्यायीमें कामदेवका जय निरूपण किया है स्वयं श्रीधरस्वामी कहते हैं कि यह लीला कामदेवके दर्प चूर्ण करनेको की है। यथा-"दर्पकन्दर्पदर्पहा । कन्दर्पदर्पविजेतृत्वप्रतीतेः । साक्षान्मन्मथमन्मथः। रासक्रीडा विडम्बनं कामजयख्यापनायेति विशेषतो निवृत्तिपेरयं पञ्चाध्यायीति" एक समय कामदेवने सब देवताओंको जय करके बडा अभिमान किया और यह विचारा कि चलकर नारायणकोभी जय करना चाहिये, तब वैकुण्ठको चला, मार्गमें नारदजी मिले, कामदेवसे बोले कहां चले ? कामदेवने कहा, त्रिलोकीको अपने अधीन कर अब भगवानको जीतनेकी इच्छासे वैकुण्ठको जाताहूं, नारदजी बोले, इस समय तौ नारायण अवतार बृन्दावनमें है और उनके जयका समयभी उत्तम

है, कारण कि वृन्दावन प्रेमका कोट है, इसमें अनेक छन्द रचनाकी झाडी हैं, जिनमें सबकेही मन उलझ जाते हैं, शुद्ध तत्वकी खाईं है, छः शास्त्रोंका परिकोट है, अठारह पुराणोंके मध्यके बुर्ज हैं; चार वेद चार द्वार हैं, भक्ति शास्त्र शतघ्नी और हरिभक्त बाणधारी वीर हैं, नास्तिकरूप शत्रुओंके मारनेको युक्तिरूप अस्त्र हैं कृष्णकृपा हरिजनसेवा रूप दूसरे द्वार पुण्य द्वारपाल हैं, यहां पुण्यात्माओंका प्रवेश होता है, पापियोंकी गति नहीं है, कृष्णके प्रेमी जन निवास करतेहैं, इसके मध्य प्रिया प्रीतमका निकुंज प्रासाद जहां श्रीकृष्ण राधिका नित्य विराजते हैं भगवद्गीता और एकादश इसके रखवारे हैं, जहां प्रत्यक्ष कहा है "सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज। अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः"। कामदेवने कहा, इस प्रकारके कृष्णको जय करना कितनी बात है, यह नारदजीसे कह कामदेव चला सन्ध्या समय वृन्दावनमें श्रीकृष्णका दर्शन किया कि मोर मुकुट धारे, कानोंमें मकराकृत कुण्डल, करमें मुरली, गलेमें वनमाल धारे गौओंके पीछे आ रहे हैं।

जिस समय व्रजके निकट आये उस समय मुरलीकी धुनि सुनतेही सम्पूर्ण व्रजवासी कोई द्वारपै, कोई अटारीपै, कोई छज्जे पर, कोई छतोंपर कृष्णका दर्शन करनेको आईं। भगवान्भी कृपादृष्टिसे उनकी ओर देखते बतराते चले, यह देख कामदेवने कहा, इनका जीतना कौन बडी बात है और उसी समय श्रीकृष्णके निकट जाय कहा, महाराज! मेरी आपसे युद्ध करनेकी इच्छा है। भगवान् उसका गर्व जानकर बोले, अवश्य हम तेरी शूरता देखेंगे, कहो वनमें वा किलेमें कहां युद्ध करोगे, कामदेवने कहा महाराज वृन्दावनमें इन्हीं गोपिकाओंके समूहके मध्यमें आपसे युद्ध करूंगा, भगवान्ने स्वीकार किया और कामदेवके बलवर्द्धक शरत्पूर्णिमामें सोलहसहस्र गोपियोंके मध्यमेंभी उनको ज्ञान देने लगे तब कामदेवने कहा, महाराज! यों नहीं मानूंगा, आप इनके संग नृत्य विहारादि करो यदि स्पर्शादिसे आप वशीभूत न हुए तौ जानूंगा, तब भगवान्ने स्वीकार कर रासविलास किया और गोपिकाओंमें अभिमान जान एक गोपीको साथले अंतर्ध्यान हुए, फिर उसेभी अभिमानवती जान

त्यागन किया फिरे जब गोपिकाओंने अनेक विलाप कर उन्हींकी लीला करी तब आपने प्रगट हो उनके प्राण बचाये तथा कामका मद चूर्ण किया। उस स्थलमें शुकदेवजीने दो पद कहे हैं 'तासामाविरभूच्छौरिः" और "साक्षान्मन्मथमन्मथः" अर्थात् उनके मध्यमें शूरसेनके पोते कामका मद चूर्ण करनेवाले प्रगट हुए, यहां नन्दकुमार न कहा किन्तु शूरता करनेसे दादाका नाम उल्लेख किया और कामका मद चूर्ण करनेवालाभी लिखा और यहां यदि रासलीलाके विहारपर शंका है तो यह हृदयमें भक्ति उदय न होनेका कारण है, पूर्णकाम पुरुषोत्तमने केवल जीवोंपर अनुग्रह करनेके निमित्तही अवतार धारण किया है, जिसके श्रवणसे मुक्त मुमुक्षु विषयी सभी प्रकारके जीवोंके चित्त आकर्षित हो जांय यथा भा० स्कं० १० अ० ३३ श्लो० ३७ "भजते तादृशी क्रीडा यां श्रुत्वा तत्परो भवेत्" वह आत्माराम हैं उनमें विषयासक्तिकी सम्भावना नहीं है, यथा "आत्मारामोऽप्यरीरमत्, रेमे तया चात्मरत आत्मारामोऽप्यखंडितः" भागवते। भगवान्की लीलात्मक प्रवृत्ति रागद्वेषात्मक विषयवासनाकी गणनामें नहीं हो सकती कारण कि वह अलौकिक गुणसम्पन्न हैं और यदि उनकी प्रवृत्तिको विषयवासनायुक्त मानें तो सृष्टिकी उत्पत्ति आदिभी परब्रह्ममें एक प्रकारकी विषयवासना होगी, यदि कहो कि यह अनुमान जीवमें घट सकता है ईश्वरमें नहीं तो यह जानो कि अवतार साक्षात ब्रह्मस्वरूपही है और विषयवासनाजन्य कर्मोंकीही पाप पुण्य संज्ञा है और जब प्रभुमें विषयवासना नहीं तो पापपुण्यका सम्भव नहीं हो सकता, गीतायां " यस्य सर्वे समारम्भाः कामसंकल्पवर्जिताः। ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तमाहुः पंडितं बुधाः॥" अर्थात् जिसके सब संकल्प कामनासे रहित हैं वह ज्ञानाग्निसे कर्म दग्ध कर चुके हैं उन्हींको पंडित कहा जाता है "कृत्वापि न निबद्ध्यते" गीता। वह सब कुछ करकेभी कर्ममें लिप्त नहीं होते, इसीसे आगे शुकदेवजी कहते हैं, अनीश्वर इसको मनसेभी न करे, कारण कि वह बँधेगा, ईश्वर विषयवासनारहित है और भगवान्ने गोपियोंको इस लीलामें नियुक्त नहीं किया किन्तु ज्ञान पूर्वक उनको समझाया परन्तु उनकी उत्कट विहार इच्छा देख मनोरथ पूर्ण किये,

किसी रीतिसे प्रभुके सन्मुख होना निन्दित कर्म नहीं है, प्रत्युत मोक्षजनक है। कंसने भयसेही मुक्ति पाई इत्यादि और गोपियोंको साधारण गोपकन्या समझकर शंकित पुरुष शंकायुक्त प्रश्न करते हैं किन्तु गोपी साधारण गोपी नहीं वेदकी श्रुति हैं और इन्होंने पूर्णब्रह्म पुरुषोत्तमके संग विहार करनेके निमित्तही गोपीरूप धारण किया है, इससे इनका शुद्धानुरागपूर्वक भगवान्में अनुरक्त होना और उनपर पतिभाव करके उनके संग विहार करना दूषण नहीं किन्तु भूषण है तथा नाना गोपी भगवच्छक्तिरूप हैं और जब कि पुराणादिमें वेद मूर्तिमान् लिखे हुए हैं तब श्रुतियोंके मूर्तिमान् होनेमें क्या आश्चर्य है ? तथा अक्रूरने यमुनामें समस्त शक्तियोंसे सेव्यमान भगवान्का दर्शन किया और अनेक गोपी देवी हैं जिन्होंने प्रभुकी लीलाके निमित्तही गोपीस्वरूप धारण किया है।स्कं० १०श्लो० २३ "वसुदेवगृहे साक्षात् भगवान् पुरुषः परः । जनिष्यते तत्प्रियार्थं सम्भवन्तु सुरस्त्रियः॥" अर्थात् वसुदेवगृहमें साक्षात् भगवान् जन्म लेंगे उनकी प्रीतिके निमित्त देवियेंभी जन्म लें । इससे गोपी साधारण गोपी नहीं किन्तु दिव्यदेवी तथा शक्ति हैं। इससे यही फल निकला कि न तौ प्रभुने उनको विहारमें नियुक्त किया और न उनका मनोरथ पूर्ण करना अनुचितही हुआ, कारण कि भगवान् कल्पवृक्ष हैं और न थे गोपकन्या मानुषी हैं किन्तु श्रुति शक्ति और देवी हैं और अवतारोंके वेही आचरण कर्तव्य होते हैं जो उन्होंने कर्तव्य योग किये हैं। जो आचरण दुःसाध्य तथा मनुष्य शास्त्रसे बाह्य विदित हों वह जीवको कभीभी कर्तव्य नहीं हैं। जैसे भूमिके भार हरणमें यादवकुलसंहार शाम्बशापादि, दुःसाध्य पर्वतधारण, विश्वरूप दर्शनादि अर्थात् जो प्रभुके उपदेश हैं वेही धर्म हैं,उपदेशके विरुद्ध करनेमें जीवका कल्याण नहीं है। अवतारोंमें ऐश्वर्य और मानुष दोनों भाव मिले रहते हैं सो मानुषभाव प्रधानका अनुसरण हो सकता है और ऐश्वर्य प्रधान जीवको दुःसाध्य है और कृष्णलीलामें बात २ में ऐश्वर्य प्रधान है इससे जीवको अनुकरण करनेकी इच्छाभी न करनी चाहिये, गोपियोंका प्रेम भगवान्में अद्वितीय था और काम उनका भगवद्भक्तिविषयक था ऐसा भगवद्विषयक प्रेम परम प्रशंसनीय है तथा वह उनका पूर्ण माहात्म्यभी

जानती थीं "अखिलदेहिनामन्तरात्मदृक्" भागवत। कि आप सब देह-धारियोंके अंतरात्मा हो, तथा जिस समय वंशीनाद सुन प्रभुके समीप गोपियां उपस्थित हुईं तब भगवान्ने कामांशके विषयमें असंतोषपूर्वक उपदेश किया और अनुरागके विषयमें सन्तोष प्रगट किया परन्तु जब उनकी अत्यन्त व्याकुलता देखी तब अनुरागको कामसे उत्कट समझ और कामको अनुरागरूपसे परिणत देख उनके संग क्रीडा की और उनका कामांश अनुरागरूपसे परिणत हो गया, यह दोनों लीला एकसी हैं जब चीरहरनमें "भगवानाह ता वीक्ष्य शुद्धभावप्रसादितः" भगवान्ने उनका शुद्ध भाव देखा तब वरदान दिया कि अब जाओ तुम्हारे मनोरथ पूर्ण होंगे, और इस लीलामें उनके किंचित् काम अभिमानादि शेष थे वहभी दूर हो गये और फिर उनको नीतिका उपदेश किया जब शुद्धानुराग रहा भगवान्ने दिव्य रासक्रीडाका प्रादुर्भाव किया और वहांसे शुद्धानुरागमय लीला चली हैं, इसी कारण देवताओंने भेरी बजाई, पुष्पवृष्टि कर गान किया और इसी प्रकरणमें शुकदेवजीने उनको स्त्री रत्न कहा है, इस कारणसे शुद्धानुराग होनेसे गोपी प्रेमिमात्रकी शिरोधार्य हुईं, जैसे एक दीपसे सहस्र दीप बालकर वह वैसाही रहता है इसी प्रकार भगवान् प्रकट स्वरूप होकरभी पूर्णही रहते हैं, उनकी लीलामें शंका न करके वह चरित्र सुनना चाहिये। औरभी प्रकृति पुरुष आदिका जो आशय इनमें वर्तता है सो श्लोकार्थमें लिखते जांयगे। रास तीनों प्रकारका होता है, कायिक, मानसिक, वाचिक। प्रथम अध्यायमें "वीक्ष्य रन्तुं मनश्चक्रे" से मानसिक रास, दूसरे तीसरे अध्यायमें वाचिक, चौथे पांचवेंमें कायिक रास है। रासके समय कुमारावस्थाहीमें किशोरावस्थाका प्रादुर्भाव हुआ था, विष्णुपुराणमेंभी कहा है "सोऽपि कैशोरिकवयो मानयन्मधुसूदनः। रेमे ताभिरमेयात्मा क्षपासु क्षपिताहितः॥" शृंगारकी शोभा किशोर अवस्थासेही है इस कारण किशोरावस्था मानकर रास किया। सात वर्षकी अवस्थाहीमें कार्तिकी अमावास्याको दीपदान, प्रतिपदाको गोवर्द्धन पूजा, दशमीको गोविन्दाभिषेक, एकादशीको नन्दव्रत द्वादशीको वरुणलोकगमन, त्रयोदशीको वैकुण्ठदर्शन, फिर अष्टम वर्षमें रासलीला करी, यह

रास आकाश, पाताल, भूलोक, विराट् और सत्पुरुषोंके मध्यमें निरन्तर होता रहता है, पांच अध्यायमें यह पूर्ण करनेसे पंच महाभूतसे मानो पृथक् करना है और यही पंचाध्यायी नहीं भागवतमें औरभी कई पंचाध्यायी हैं, चतुर्थमें बालपंचाध्यायी है, जिसमें ध्रुवका उपाख्यान है, फिर पुरंजनाख्यानकी अध्यात्मपंचाध्यायी, फिर पंचममें भूगोलपंचाध्यायी, सप्तममें वर्णाश्रमके विभागनिरूपणकी कर्मपंचाध्यायी, एकादशमें ज्ञानपंचाध्यायी, दशममें शृंगारनिरूपणकी यह रासपंचाध्यायी कही है, यदि कहो कि इसके पांचही अध्याय क्यों कहे तौ इसका आशय यह कि कामदेवके पांच बाण हैं, जो उन्मादन, तापन, शोषण, स्तंभन और सम्मोहन कहाते हैं, सो प्रत्येक अध्यायमें वही लीला करके पांचों बाण नष्ट कर दिये, अथवा पांच कोश पांच आवरण पंचभूतके विकार दूर करनेको पांच अध्याय कहे हैं, अथवा यह पंचाध्यायी कामनाशक रुद्रके पांच मुखस्वरूप है, अथवा पांच ज्ञान इन्द्रियोंके शोधनके निमित्त पांच अध्याय हैं, अथवा देहमें पांच प्राणकी समान यह पांच अध्याय श्रीमद्भागवतके प्राणरूप हैं, अथवा यह श्रीकृष्णकी प्रभुताईके पांच पंच हैं, श्रीकृष्णचन्द्रने अन्तर्ध्यान होते समय कहा था मेरे पीछे मेरा स्वरूपभूत भागवत ग्रन्थ स्थिर रहेगा सो पहले दूसरे स्कन्ध भगवान्‌के चरण, तीसरे चौथे जंघा, पंचम कटि, षष्ठ नाभि, सप्तम अष्टम भुजा, नवम स्तन, दशम हृदय, एकादश मुख, द्वादश ललाट है, यह पांच अध्यायही मानो हृदयमें पांच प्राण हैं,सो दशमरूप हृदयमें विराज रहे हैं,इससे यह पंचाध्यायी दशममें कही कविजनोंको काव्यमें नव रसोंका समावेश करना पडता है, यदि ऐसा न किया जाय तौ साहित्यके अनुसार ग्रन्थ दूषित हो जाता है इस कारण व्यासजीने इस पंचाध्यायीमें श्रृंगार और करुणा दोनों रसोंको पूर्ण रूपसे दरशाया है, फिर अधिकारियोंके भेदसे शृंगारमें अधिक रुचि दिखानेसे उसमेंही पूर्ण उपदेश किया है, शुकदेवजीने राजाको पंचाध्यायीका अधिकारी जानकर इसके पूछे विनाही पंचाध्यायीका उपदेश किया, कारण किं "गूढो तत्व न साधु दुरावहिं। आरत अधिकारी जहँ पावहिं॥" इससे राजाको अधिकारी जानकर उपदेश किया।

किसी भागवतमें 'शुक उवाच' और किसीमें 'बादरायणिरुवाच' लिखा इसका क्रमसे वर्णन करते हैं। जिस प्रकार तोतेका चाखा फल अधिक सुन्दर होता है या पढे तोतेकी ध्वनि सुन्दर विदित होती है, अथवा जितना पढाओ उतना बोले है इसीका इसी भाँति कविताकी मधुरता मनोहरताकी अधिकाई शुकदेवकी वाणीसे होती है, शुकदेवजी प्रिया प्रीतमकी लीलाके द्रष्टा हैं, जैसी देखी है वैसी वर्णन करेंगे। बादरायणि कहनेका आशय यह है कि इस पंचाध्यायीमें श्रीकृष्णकी महामहिमाका वर्णन है, व्यासजी उस तत्वको जानते हैं और कोई नहीं, इस कारण व्यासजीके पुत्रने ऐसा लिखा। बद्रिकाश्रममें तप करनेसेही व्यासजी बादरायण कहे जाते हैं, वह तपस्या कुछ और नहीं श्री साक्षात् श्रीकृष्णकी उपासनाही वह तपस्या है। जैसे भगवान् पुरातन पुरुष हैं उसी प्रकार व्यासजी सर्वज्ञ हैं तब वह श्रीकृष्णके सिवाय किसकी उपासना करते ? शुकदेव उसी तपस्याके साक्षात् फल हैं, इसी कारण वह जगत्में सबके परमादरके पात्र हैं और विशेष कर रासलीलाकी आदिमें यह पद आनेसे माहात्म्यकी पराकाष्ठा विदित हुई है, तात्पर्य यह है कि जो जो शुकदेवकी समान भक्तिपरायण हो वही इस कथाके सुननेका अधिकारी है, नवरसपूर्ण श्रीमद्भागवत है किसी प्रकारकी न्यूनता न रहे इसी कारण यह लीला शृंगाररसमें वर्णन की गई है और शुकदेवपक्षमें शुकदेवकी समान उज्ज्वल रसमें आवेष्टित चित्त करके इस लीलाको श्रवण करे, शृंगार रसकोही उज्ज्वल और आदिरस कहते हैं, विचारनेसे यही सबमें प्रधान है, इससे इसके अनुभावभी प्रधान हो सकते हैं। पंचाध्यायीका आभास भगवान्ने अपने प्यारे भक्तोंके लिये सभी कुछ किया है, व्रजकी सुन्दरियें उनके ऊपर अपना अत्यन्तही प्रेम करती थीं, इस कारण उनके मनोरथोंको पूर्ण करना उनका एक मुख्य कार्य था और वही उनका महान् सुख था, इन दोनोंही विषयोंको प्रगट करते वा दिखाते हुए सम्पूर्ण लोकोंकी पांच इन्द्रियोंकी समान, भक्तजनोंको अत्यन्त प्रीतिके देनेवाले पंच अध्यायसे गोपियोंके साथ

भगवान् श्रीकृष्णकी रासलीलाको वर्णन करते हैं, क्योंकि गोपियेंही सब प्रकारसे उनकी ऐसी रासक्रीडाके योग्य पात्र थीं, कारण कि "भगवान् साक्षात् मन्मथकेभी मन्मथस्वरूप हैं उनका यह शरीरभी त्रिलोकी समस्त सुन्दरताका अनुपम आधार है, यह नहीं कह सकते कि गोपियोंने कौनसे ऐसे तप किये थे कि वह अपनी दृष्टिसेही भगवान्की उस अनुपम सुन्दरताको पान करती थीं" इत्यादि। इन्हीं विधानोंसे इस भागवतके स्थान २ पर भगवान्की असाधारण महिमाके सम्बंधमें जो सम्पूर्ण चरित्र कहे गये हैं, उन सबको देखनेसे यह स्पष्टही विदित होता है कि भगवान्के रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द वा वाक्य ये संपूर्ण आत्मारामोंको दुर्लभ हैं और उनका अनुभव करनाभी अत्यन्तही विचित्र है, गोपियोंने इन सबकी विचित्रताको जिस प्रकारसे अनुभव किया था, वैसे और किसीनेभी नहीं किया, विशेष करके भगवान्के अधरामृत रसको गोपियोंके अतिरिक्त और किसी स्थानमें पानसम्भव नहीं और वह गोपियें प्रेमके विशेष विस्तारमें जैसी हो गई थीं, ऐसा दूसरा दिखाई नहीं देता इत्यादि कारणोंसेही गोपियोंका भगवान्के संग ऐसा विहार करना योग्य और नित्यसिद्ध है और कहांतक कहें समझनेवालोंको यही बहुत है। श्रीमद्भागवतकी रासलीलामें जो चमत्कार हैं वह हमने रासपंचाध्यायी पुस्तककी श्लोकोंकी टीका करतेमें दिखाये हैं बुद्धिमानोंको उचित है कि आदिसे अन्ततक प्रथम इस रहस्यको विचारके साथ देख जांय तब विदित होगा कि यह कैसा अनुपम रत्न है।

सज्जनोंका कृपाभिलाषी,

ज्वालाप्रसादमिश्र, मुरादाबाद.

मुरादाबाद निवासी–

स्वर्गीय पं० बलदेवप्रसादजीमिश्रका–

संक्षिप्त जीवनचरित्र।

श्लोकाः–

इयमुक्तिरिहाऽनृता कृता त्वधिवृद्धं करुणाऽतिरेकता। इति चेन्न कथं पितामह–त्रिदिवौका बलदेवपण्डितः॥ १॥ शिरसा न विभर्षि का रति-र्महि रत्नं बत रत्नगर्भिके। यदधः कृतवत्यहो गुणादगुणिरत्नं बलदेवप-ण्डितम्॥ २॥ अहह प्रियरूपसद्गुणैर्भुवि मिश्रो बलदेव इत्ययम्। उपतापयति प्रियेतरान्किमु मित्राणि सुरालयं गतः॥ ३॥ इति शोक-धुनीपताविलो विनिमज्जन्त इह प्रिया वयम्। गिरिवेङ्कटनाथपत्तरिं शरणं याम इराधिपाऽऽश्रितम्॥ ४॥

सवैया–

सूर समान प्रचंड सुचन्द सुचन्दन पावक तूल भयो है। शीत बयार प्रहार करै न सदा जु परै दई दुःख दयो है॥ हा बलदेवजि मिश्र बिना प्रिय वस्तु समूह जु बैरिभयो है। वेङ्कटनाथ तिहारे बिना कहु कौन ने दुःख बिदारदयोहै?

नाग गवांय मणी अपनी जिमि धीरजता प्रिय नाहिं लहैं। त्यों गुणि रत्न गवांय अहो बलदेवनि मिश्र को शोक सहैं॥ मानुष देह की लाज जहाज के काज बिचारि जु मौन गहैं। हे सत पुत्र मिटाव कलेश हमेश युँ इष्टहि जाचि कहैं॥ २॥

सर्वसधारन पै करि प्रेम जु नेम सुग्रन्थ रचे बहु भासा। वेङ्कटईश्वर प्रेस को प्रेम निबाहि गये करि कीर्त्ति प्रकाशा॥ केतक ग्रन्थ छपे अरु केतक ह्वैहैं उजागर जाकी हुलासा। मानुष लोक से भाग्ना तमाशा के कारण भो मनु स्वर्ग मैं बासा॥ ३॥

"जाकी यहां चाहना है, ताकी वहां चाहना है, जाकी यहां चाह ना है, ताकी वहां चाह ना है"

संसार में कितने ही मनुष्य नित्य मरते और कितने ही उत्पन्न होते हैं, कितने ही आते और कितनेही चले जाते हैं परन्तु जिनके जन्म मरण से समाज का सम्बन्ध नहीं है, देशका सम्बन्ध नहीं है, उनके जन्म मरण से हमें न विशेष शोक ही है न सम्बन्ध ही। २८। ३० करोड़ अगण्य पुरुषों में से एक की कमी बढ़ती का प्रमाण ही क्या है। परन्तु जिसक जन्म मरण से समाज और देश का सम्बन्ध है उसके जन्म मरण का सुख दुःख समाज और देश का समझने योग्य होता है यथार्थ में उसी सपूत की माता पुत्रवती कहलाने का स्वत्व रखती है जिसके मुँह की ओर जन्म देनेवाली जननी ही नहीं किन्तु भाषा जननी और जन्मभूमि जननी भी आशा तथा चाह की दृष्टि से देखा करती हैं। वही भाग्यवान माता मातृ भाषा और मातृ भूमिका सच्चा सपूत है माता को विलखती छोड़ पुत्र का उठजाना बड़े ही शोक सन्ताप और करुणा की बात है। परन्तु फिर भी ऐसे प्रसङ्ग उपस्थित होने पर माता को वज्र की छाती करके वह दुःख सहना ही पड़ता है। इस समय हमारी जननियों के भाग्य मन्द होरहे हैं। देश भाषा और जन्मदात्री जननियों को बड़ी ही कठिनाई से सपूत पुत्र का मुख देखना पडता है। फिर यदि बिना अवसर उसके आश्रय स्थल इने गिने सपूतों पर निर्दय काल का बिकट प्रहार हो तो इससे बढकर शोक सन्ताप का और कौन अवसर होसकता है। समस्त भारत की एकमात्र भाषा सम्राज्ञी होने पर भी माता हिन्दी को यथेच्छ सुपुत्रों का सुख प्राप्त नहीं है, परन्तु जो कुछ है वह उन्हीं से भविष्य की आशा रखके सन्तुष्टहै परन्तु दुर्भाग्य की बात है कि उसके इने गिने संपूतों पर क्रूर काल की कराल दृष्टि पड़रही है। हिन्दी के जितने सपूतरूपी लेखक और सेवक हैं वह थोड़े होने के कारण अपने २ ढङ्ग के अकेले हैं इसलिये किसी एक के उठ जानेपर उसकी योग्यता का दूसरा यहां नहीं रह जाता। विशेष दुःख की बात तो यह है कि,

जैसे जाते हैं वैसे तैयार भी नहीं होते। भला यदि पण्डित प्रतापनारायण मिश्र, भारतेन्दु हरिश्चन्द्रजी, पण्डित अम्बिकादत्त व्यास की बात न भी करें तो भी पाण्डे प्रभूदयाल, बाबू कार्तिकप्रसाद, बाबू अयोध्याप्रसाद, पण्डित केशवराम भट्ट आदि सरीखे साहित्य सेवी अब हिन्दी संसार में कहां हैं। ऐसी स्थिति और समय में भली भांति अपने अनुभव विद्वत्ता, परिश्रमशीलता आदि गुणों का भली भांति बिना विकाश किये ही, अपक्क आयु में मुरादाबाद निवासी पण्डित बलदेवप्रसाद जी मिश्र का उठ जाना हिन्दी प्रेमियों को बहुत ही खटका है। खटकाही नहीं किन्तु यह समाचार उनके लिये बहुत ही शोक सन्ताप का कारण हुआ है। इस समय उनके वियोग के दुःख से उनके कुटुम्ब वालेही दुःखित नहीं हैं, किन्तु सम्पूर्ण साहित्यसेवी और उनके मित्र भी वियोग दुःख से दुःखित होरहे हैं। एक ओर उनकी बूढी माता का तुमुल क्रन्दन छातीं फाडरहा है, दूसरी ओर मातृभाषा हिन्दी भी उनके लिये हाय हाय कर रही है। अतएव ऐसे शोक को हम स्थानिक नहीं किन्तु देश व्यापी शोक समझे हैं।

कराल काल पर किसी का अधिकार नहीं है। उसपर किसी का वश नहीं चलता, नहीं तो बिना अवसर यहां से उन्हें जाते देख कहा जासकता कि बूढी माता को कलपाकर भाइयों, भौजाइयों, भगिनियों, बहनोइयों, तथा कुटुम्बीजन और इष्ट मित्रों को रुलाकर आप कहां जा रहे हैं। यदि आपको इसीप्रकार बेसमय उठ जाना था तो साहित्य संसार में आपने अपने गुणों के सौरभ को क्यों फैलाया था? यदि सौरभ फैलाना आरम्भ किया था तो साहित्य कानन को भली भांति सुगन्धित करके तब कहीं जाना था। परन्तु यह सब विलाप के कलाप हैं। वह यहां से चले गये और फिर उनका यहाँ लौटना—इस शरीरमें फिर यहां दिखाई देना असम्भव है। न उनको रोकने की किसी को शक्ति थी और न वह अपनी इच्छा से ही रुकजाने को समर्थ थे। जो हो सबको शोक सन्तप्त करके पण्डित बलदेवप्रसादजी श्रावण शुक्ल सप्तमी

को इस संसार से बिदा होगये, श्रावण शुक्ल द्वितीया गुरुवार को उनका स्वास्थ्य बिगड़ा, जी मचलाया और उवांति आई। औषधोपचार से व्याधि नहीं हटी तब डाक्टरी औषधि कीगई। पहिले डाक्टर की औषधि से कोई लाभ नहीं हुआ और रविवार को बीमारी प्रबल पड़ी। इससे सोमवार को दूसरे डाक्टर की औषधि कीजाने लगी। यद्यपि उस दिन उससे उनकी तबियत अच्छी रही किन्तु मंगलवार को फिर स्वास्थ्य अधिक बिगडा और डाक्टर वैद्य कुटुम्ब के लोग तथा मित्रोंके देखते हुए वह इस संसार से प्रयाण करगये। ऊपर लिखा हुआ किसी कवि का कथन बहुत ठीक है कि "जिसकी यहां चाह नहीं है उसकी वहां भी चाह नहीं है और जिसकी यहां चाह है उसकी वहां भी चाह है"। मृत्यु, के पहले पण्डित जी ने अपने मित्र और कुटुम्बियों को बुलाकर सबसे बिदा मांगी। जिस समय माता की गोद में हाथ रखकर उन्होंने मीठे स्वर से कहा कि, "मातः तुमभी हमको आज्ञा दो" उस समय माता तो इस वज्र वचन को सुनतेही मूर्च्छित होगई परन्तु सुननेवालों का हृदय भी विदीर्ण होने से नहीं बचा। अन्त में आप विष्णुसहस्रनाम सुनने और कुछ स्वयं भी कहने लगे। मित्र कन्हैयालाल ने राधाकृष्ण की छबि उनके सन्मुख की, उसके देखते ही देखते नेत्र मिचगये वह यहां न रहे, रहे केवल रोने और शोक करनेवाले!!!

पण्डित जी का जन्म सम्वत् १९२६ के पौष शुक्ल एकादशी को हुआ था बालकोचित लालन पालन और यज्ञोपवीत संस्कार होने के पश्चात् आपका हिन्दी का अभ्यास आरम्भ हुआ था। हिन्दी के पश्चात् अँगरेजी सीखी और फिर संस्कृत फारसी की ओर मन लगाया। बाबू पन्नालाल जैन के कहने पर आपने बँगला सीखी, यही नहीं किन्तु मराठी और गुजराती का भी अच्छा अभ्यास करलिया। कुछ दिनों के पहले आपने कनाड़ी भाषा का अभ्यास भी आरम्भ किया था। बँगला भाषा का ऐसा अभ्यास था कि, बँगला पुस्तक हाथ में लेकर एक साथ ही उसका अनुवाद असली पुस्तक के समान बोलते चले जाते थे। यही नहीं

किन्तु काम पड़ने पर मराठों के साथ मराठी गुजरातियों के साथ गुजराती और बंगालियों के साथ बंगाली में ही बात किया करते थे। समाचार पत्रोंके पढने का आपको बडा शौक था। हिन्दी, बंगाली, महाराष्ट्री, और गुजराती के कितने ही पत्र आपके पास आते थे, श्रीवेंकटेश्वर, भारतमित्र, बंगवासी, केसरी, गुजराती काल और हितबादी को आप चाव से पढा करते और अपने इष्ट मित्रों को सुनाया करते थे। कितने ही लोग आप के पास विना पूँछे पुस्तकादि के० बी० पी० भेज दिया करते थे परन्तु आप उन्हें कभी लौटाते नहीं और कहते कि "कुछ समझ करही तो उसने भेजा होगा"। १८। २० वर्ष की आयु में आपने साहित्यसरोज, सत्यसिन्धु, भारतवासी, भारतभानु और सोलजर पत्र का संपादन भी किया था इधर कई वर्ष पहले आपने तन्त्रप्रभाकर पत्र निकाला था जिसमें तन्त्र विषय के लेखों के अतिरिक्त साहित्य और धर्म विषयक अच्छे लेख निकला करते थे। कुछ मित्रों के साथ मिल उन्होंने तन्त्रप्रभाकर नाम का एक प्रेस खोला था परन्तु किसी आपसी झगड़े के कारण आपने उससे संबन्ध छोड़ दिया, तन्त्रप्रभाकर पत्र भी कुछ ही वर्ष चलकर बन्द होगया। तबसे आपने पुस्तक प्रणयन करने में ही विशेष ध्यान लगाया यद्यपि आप कविता करने का अभ्यास नहीं रखते थे तथापि काम पड़ने पर अच्छी कविता करलेते थे और लिखने में ऐसी जल्दी लिखते थे कि एकबार एक फ़ारसी लिखनेवाले कोभी हार माननी पड़ी थी। पुस्तक संग्रह करने का आपको बड़ाभारी शौक था प्रत्येक विषय की पुस्तकों का आपके यहाँ बड़ाभारी संग्रह है, उनके आफिस का एक कमरा उनकी पुस्तकों से ही भरा हुआ है। कभी २ आप पुस्तकों के ढेर को देखकर कहा करते थे कि "हमारे पश्चात् न जाने इनकी कैसी स्थिति होगी" परन्तु सुयोग्य प्रख्याति प्राप्त ज्येष्ठ भ्राता विद्यावारिधि पण्डित ज्वाला प्रसाद जी मिश्र ने उनके आत्मा को सन्तुष्ट करने और अभिलाषा को पूर्ण करने के लिये निश्चय किया है कि, उनका कार्य्यालय ज्यों का त्यों रहेगा और पुस्तकों का संग्रहालय भी बना रहेगा। बुद्धि की विलक्षणता

और पुस्तकों के पठनपाठन से आपका अनुभव ऐसा परिपक्व होगया था कि किसी भी विषय की पुस्तक लिखने के लिये आप तैयार होजाया करते थे सबसे पहले आपने मास्टर अम्बाप्रसाद के कहने से जागती ज्योति नाम की पुस्तक लिखी थी वहीं से जागती ज्योति के समान उन की कीर्त्ति का फैलना आरम्भ हुआ । फिर तो आपने बहुतसी पुस्तकें अनुवाद, भाषा टीका, तथा स्वयम् लिखित तैयार कीं । उनकी कुछ पुस्तकें श्रीवेंकटेश्वर समाचार तथा भारतमित्र के उपहारों में बँटी हैं । कुछ पुस्तकें इधर उधर प्रकाशित हुई हैं । कुछ लक्ष्मीवेंकटेश्वर प्रेस और अधिकांश इसी श्रीवेंकटेश्वर प्रेस में मुद्रित हुई हैं । आपकी अनुवादित तथा लिखित पुस्तकें—वाराही संहिता, भाषा भागवत, नैपाल का इतिहास, पानीपत, नन्दविदा नाटक, देवी उपन्यास, रसेन्द्रचिन्तामणि, मिश्रनिघण्टु, प्रभासमिलन, महानिर्वाण तन्त्र, लघु भागवतामृत, हितोपदेश, शिवाजीविजय, लल्लाबाबू प्रहसन, नाटक निर्माणविधि, यन्त्र चिन्तामणि सूर्य्यसिद्धान्त, रमलभास्कर, पृथ्वीराजचौहान, तातियाभील, अध्यात्मरामायण मेघदूत, ताजिरातहिन्द, कल्किपुराण आदि हैं । बहुतसी पुस्तकें अभी बिना छपीहुई पड़ी हैं जो धीरे २ श्रीवेंकटेश्वर प्रेस में प्रकाशित होंगी । टाड राजस्थान का भी आपने अनुवाद किया है वह भी कुछ शेष अंश की पूर्ति कराकर इसी प्रेस में प्रकाशित होगा[1] । आपने तन्त्रशास्त्र की कई पुस्तकें मराठी गुजराती में भी तैयार की थीं पिछले साल पण्डितजी जगदीश यात्रा को गये थे ।

विद्याव्यसन में आपका अधिक मन लगारहा करता था इस कारण अधिक उमर होजाने पर भी आपने विवाह नहीं किया था परन्तु कुटुम्ब के लोग तथा माता भ्राता के आग्रह से सम्वत् १९५७ में आपका विवाह हुआ । यद्यपि स्वर्ग जाते समय में आप कोई सन्तान छोड़ नहीं गये थे किन्तु तीन महीने पीछे एक कन्याका जन्म हुआ जो इस समय विद्यमान है ।

---

१ राजस्थानके दोनों भाग छप चुकेहैं प्रत्येकका मूल्य १०) १०) रु. हैं ।

पंडितजी की प्रकृति बहुत ही सरल और दयालु थी। छोटे लड़कों पर आपका अधिक स्नेह रहता था। आप उन्हें हंसाने खिलाने लगजाते थे। बिना ऊंच नीच का विचार किये, बीमारों की दवा आदि करते कराते थे। जब कोई गरीब आपके पास आजीविकाके लिए आता तब आप उसे कहीं न कहीं धन्धेसे लगा दिया करते थे। साहस और वचन पालने की दृढता भी आपमें अधिक थी। अपने वचन की पूर्ति के लिए आप तन मन धन से सचेष्ट रहते थे। राज कार्यालयमें काम पड़ने पर सत्यपक्षवालेका पक्ष लेनेमें आप हिचकते नहीं थे। जिस से स्नेह होता उसकी भलाई करने में तत्पर रहते थे। धार्मिकता और देवभक्ति भी आप में कम नहीं थी। महावीर जी के मन्दिर में प्रतिदिन दर्शनों को जाते थे। कभी २ सनातन धर्म सभाओं में जाते और व्याख्यान देते थे। गङ्गा स्नान में आप की बड़ी प्रीति थी प्रतिवर्ष आप गङ्गा स्नान को जाते और बीच २ में हरिद्वार भी हो आते थे। भोजन के पहले स्तोत्र पाठ अवश्य करते थे कोई न कोई पण्डित आप के यहां नित्य पूजा किया ही करता था मिलनसार ऐसे थे कि उन से मिलकर कोई प्रसन्न हुए बिना नहीं रहता था। प्रायः सबही हिन्दी पत्र और हिन्दी लेखकों से आप का स्नेह तथा परिचय था। श्रीमान् छत्रपुर नरेश आप का बड़ा आदर सत्कार करते थे। आपने इन्हें कईबार बुलाया और जब २ यह गये तब २ कोई न कोई ग्रन्थ उन्हें समर्पित किया ही। टिहरी गढवाल के महाराजकुमार श्री विचित्र शाह भी आप का बड़ा आदर करते थे। उन्हें भी आपने कई पुस्तकें समर्पित की हैं। जा चिट्ठी किसी से न चलती उसे आप पढलिया करते थे मुरादाबाद में जो इस समय विद्या की चर्चा सुनने में आती है। वह आधिकांश में पण्डितजी के कारण से है। आप ऐसे परिश्रमी थे कि सारादिन पारसलों के भेजने तथा दूसरों के काम में बिताते और रात को दो ढाई बजेतक जागकर अपना काम करते थे। पुस्तकों की बिक्री तथा ग्रन्थों के लिखने में आपकी दैनिक आय प्रायः आठ दश रुपये होती थी परन्तु उसका अधिकांश भाग आप पुस्तकों के खरीदने में लगा दिया करते थे। श्रीवेंकटेश्वर प्रेस तथा इस पत्र के मालिक सेठ खेमराज श्रीकृष्णदास पर आप

की बड़ी कृपादृष्टि रहा करती थी आप इस कार्यालय के सच्चे शुभचिंतक थे एकबार मुरादाबाद के लाला गनेशीलालजीने आपको अधिक व्यय करने से हाथ रोकने के लिए कहा था तब आपने उत्तर दिया था कि मेरे ऊपर बड़े भाई तथा सेठ जी हैं इससे मुझे व्यय करने में सङ्कोच नहीं है स्वर्गवासी सेठ गंगाविष्णु श्रीकृष्णदासजी तथा श्रीवेङ्कटेश्वर समाचार के मालिक महोदय पर जो आपकी प्रीति थी वह लोगों से बातचीत करते समय प्रायः प्रकाशित होजाया करती थी।

भारतमित्र सम्पादक बाबू बालमुकुन्दजी गुप्त तथा पण्डित दीनदयालुजी शर्म्मा महोदय से आप का अच्छा स्नेह था। पण्डित कन्हैयालालजी उपाध्याय सनातनधर्म पताका के सम्पादक पण्डित रामस्वरूप शर्म्मा, पण्डित श्रीलालजी, पं०विशेश्वरनाथ, पं० रामचन्द्रजी उपदेशक पीलीभीत, उपदेशक पंडित बनमालीशङ्कर मिश्र, पं० हरिहरनाथ शास्त्री, पं० बैजनाथ, पं० ऋषिराम, पं० गङ्गाप्रसादजी आदि से आप की मित्रता थी। मुरादाबाद की सनातनधर्म सभा ने उनके लिए शोक प्रकाशित किया है उनके ज्येष्ठ भ्राता पण्डित ज्वालाप्रसादजी मिश्र कनिष्ठ भ्राता पण्डित कन्हैयालाल आदि पर जो यह शोक का पहाड़ गिरा है वह कहकर बतलाने की बात नहीं है। यह शोक केवल उनके कुटुम्बकाही नहीं किन्तु सम्पूर्ण हिन्दी संसार का है। पण्डितजीके स्वर्गवास से हमने अपना एक शुभचिंतक, सहायक तथा मित्र खोया है इस लिए इस घटना से हमारे हृदय को भारी चोट का लगना स्वाभाविकही है। ईश्वर उनके आत्मा को सद्गति प्रदान करे। कुटुम्बवालों को धैर्य देकर उनकी शेष आज्ञा पूर्ण करे तथा हिंदी में उनके ऐसे अनेक साहित्यसेवी उत्पन्न हों।

पुस्तक मिलनेका ठिकाना—
खेमराज श्रीकृष्णदास,
"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् प्रेस—बंबई.